जनदासदेवकर्णाभ्यां सुरपति पु. वेलादियुतः पितृव्यराजापुण्यार्थं श्रीकुंथुनाथबिंबं का. प्र. श्रीजिनचंद्रसूरिभिः श्रीखरतरगच्छे ।।

संवत् 1518 वर्षे ज्येष्ठवदि 4 दिने ऊकेशवंशे लूणिआगोत्रे सा. आसकरण पुत्र सा. गजा सा. रता सा. तेजाश्रावकैः सपरिवरैः श्रीश्रेयांसबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीखरतरगच्छे श्री जिनभद्रसूरिपट्टे श्री जिनचंद्रसूरिभिः।।

।। सं. 1518 वर्षे ज्येष्ठवदि 10 रवौ श्रीश्रीमा. श्रे. परवत भा. ऊबकू सु. नीसलेन भ्रातृ ठाकुरसी सु. करमसी काल्हायुतेन मातृपितृश्रेयसे श्रीमुनिव्रतस्वामिबिंबं पूर्णिमा पक्षे श्रीगुणधीरसूरीणमुपदेशेन कारितं प्रति. च विधिना ।

संवत् 1523 वर्षे मार्गशीर्षवदि 12 संखवालगोत्रे सा. देपा पुत्र केल्हा केल्हणदे पुत्र सा. सेखाकेन भार्या सलषणदे पुत्र देवराजादिपरिवृतेन स्वपुण्यार्थं श्री चंद्रप्रभबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं च श्रीखरतरगच्छे श्री जिनचंद्रसूरिभिः ।।

।। संवत् 1528 वर्षे आषाढसुदि 2 दिने ऊकेशवंशे शंखवालगोत्रे सा. मेढा तत्पुत्र सा. ऊधरणश्रावकेण सपरिवारेण श्रीअजितनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरिपट्टे श्रीजिनचंद्रसूरिभिः।।

सं. 1533 वर्षे। पोवदि 10 गुरू प्रा, वा. ज्ञाती व्य. लूणा भा. लूणादे मु. राजा भा. नींणू सु. शकू श्रीसुमतिनाथबिंबं कारितं तपागच्छे श्रीसोमसुंदरसूरि तत्पटे श्रीरत्नशेखरसूरि तत्पटे श्रीलक्ष्मीसागरसूरि वीसलनगरवास्तव्य शुभं भूयात्।।

।। ॐ ।। सं. 1536 वर्षे माघसुदि 5 दिने श्री ऊकेशवंशे जावकगोत्रे सा. हीरा भार्या भा. हीरू तत्पुत्र सा. थाहरूश्रावकेण भार्या नयणी पुत्र सा. देवदत्त सा. सांगणादिपरिवृतेन श्रीविमलनाथबिंबं स्वश्रेयोर्थं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनहंससूरिभिः।।

।। सं. 1536 वर्षे फागुणसुदि 3 वाफणागोत्रे सा. मूला भा. महगलदे पु. सा. धर्माकेन भा. अमरी पु. पेथाकाजासांतलसामलसकुटुम्बयुतेन श्रीशांतिनाथबिंबं कारितं प्रति. श्री वृहगच्छे श्री मेरुप्रभसूरिभिः ।।

।। सं. 1536 वर्षे फागुणसुदि 3 दिने ऊकेशवंशे परीक्षगोत्रे प. हासा पु भउणपाल भा. रयणादे पु. रिम्माकुंटापरंपर्यायेन करणा पु. वीदादेवादिपरिवारयुतेन श्रीअजितनाथबिंबं का. प्र. श्रीखरतरगच्छे श्री जिनभद्रसूरिपट्टे श्रीजिनचंद्रसूरिभिः।।

संवत् 1536 वर्षे फागुणसुदि 3 रवौ ऊकेशवंशे गोलवछागोत्रे सा. सच्चा भार्या सिंगारदे पु. रिणमा [ल] सा. राणा भार्या माकूयुतेन श्रीकुंथुनाथबिंबं कारितं प्र. खरतरगच्छे श्रीजिनचंद्रसूरिभिः ।।

।। ॐ ।। संवत् 1536 वर्षे फा. सु. 3 ऊकेशवंशे दोसीगोत्रे सा. सरवण सिरिपादे पुत्र सा. भांडाकेन पुत्र रतनाषेतापाताप्रमुखपरिवारसहितेन श्रीसुमतिनाथबिंबं कारितं प. खरतरगच्छे श्रीजिनचंद्रसूरिभिः ।। साधुशाखायां ।।

।। सं. 1538 वर्षे ज्येष्ठवदि 4 भौमे श्रीसोनीगोत्रे जागूसंताने सा. डूंगर पु. सा. केरना भा. रइराही पु. सा. आभाकेन भा. रमू पु. नानूश्रीमल्ल्युतेन आत्मपुण्यार्थं श्रीचंद्रप्रभबिंबं कारापितं प्र. जिनोदयसूरिपट्टे श्रीदेवसुंदरसूरिभिः ।।

सं. 1538 वर्षे फागुणसु. 3 श्रीउपकेशज्ञातौ। वाघमारगोत्रे। मं. कुशला भा. मलादे नाम्न्या पु. रणधीररणवीरसूंठासरवण सादाधरमाधिरासहितया स्वपुण्यार्थं श्री सुविधिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री उपकेशगच्छे ककुदाचार्यसंताने श्रीदेवगुरुसूरिभिः श्री णीयाणाग्रामे।

।। संवत् 1551 वर्षे पौससुदि 13 शुक्रे श्रीश्रीमालज्ञा. दो. सीहा भा. वाबू सु. 10 भोला भा. रंगी सु.

वर्द्धमानवस्तासूटाआत्मश्रेयोर्थं जीवितस्वामि श्रीशांतिनाथबिंबं का. श्रीपूर्णिमाए. प्रधानशाखायां श्रीजयप्रभसूरिपट्टे श्रीभुवनप्रभसूरिणामु. प्र. नवास्तव्य।

।। सं. 1558 वर्षे फागुणवदि 2 बुधे श्रीभावडारगच्छे उपकेशज्ञा. आसुत्रियागोत्रे सा. भा. खेतलदे पुत्र मांडणमहिपाजीदाकेन पितृमातृभ्रातृपुण्यार्थं श्रीशांतिनाथबिंबं कारितं श्रीकालकाचार्यसं. भ. श्री विजयसिंहसूरिभिः प्रतिष्ठितं ।। सीरोहीवास्तव्य ।। श्री ।।

।। सं. 155 वर्षे पौषवदि 5 गुरुवासरे श्रीउपकेशज्ञातौ डिंडिभगोत्रे सा. मोकल भा. सू पुत्र 3 सिंघा सादा सिवासिंघा भा. रोहिणी पु. देवाकेन भा. देवलदेसहितेन नाडावासहितेन च पूर्वजनिमित्तं श्रीअरनाथबिंबं का. प्र. श्रीउपकेशगच्छे ककुदाचार्यसंताने श्री कक्कसूरिपट्टे श्रीदेवगुरुसूरिभिः ।।

संवत् 1566 वर्षे माहसुदि 4 गुरौ ओसवालज्ञातीया बूवाडेचागोत्रे सा. हांसा भा. हांसलदे पुत्र सा. होला भा. हीरादे पुत्रलोलासहितेन श्रीअजितनाथबिंबं का. प्र. श्रीवृहगच्छे बोक. वटंके श्रीमलयहंससूरिभिः ।। श्री ।।

संवत् 1567 वर्षे वैशाखसुदि 5 दिने श्रीमाल सा. दोसा भार्या संपूरा पु. सा. उदयराज सा. रालाभ्यां श्रीचंद्रप्रभबिंबं कारितं वृद्धभ्रातृडालणपुण्यार्थं ।। पु. ।।

सं. 1683 आषाढव. 4 जसलमेरुवास्तव्य । को । साद्त्र । सुत देवराजकेन । श्री मुनिसुव्रतस्वामिबिंबं कारितं। प्रतिष्ठितं। तपागच्छाधिराज भ. श्री विजयदवेसूरिभिः।।

सं. 1683 आषाढवदि 4 पु । त्रे । जेसलमेरवास्तव्य । को । रायसिंग ।। भार्या सुहागदे सुत कोणू जर मलूसिंघ जतामानोत । पं. श्रीसंभवनाथबिंबं कारितं । प्र. तपागच्छाधिराज श्रीविजयदेवसूरिभिः।।

मूर्त्तियों पर ।

।। सं. इलाही 48 सं. 1659 वर्षे वैशाखसित 13 बुधे कोः मि भा सुत कोः मातात्मना कारितं श्रीविमलनाथबिंबं प्रतिष्ठिता एठा तपागच्छे श्री विजयसेनसूरिभिः प्रतिष्ठितं च।।

संवत् 1672 वर्षे माहसुदि 13 श्रीपार्श्वनाथबिंबं

संवत् 1753 वर्षे ज्येष्ठसुदि 5 सोमे सागवाज (?) नगरे सा लगिया मेहनी डोसाः लगिया कोहीय सा. कुं थुदास ।। ठ ।। इस हजु श्रीपार्श्वनाथ (प्र)तिमा प्रणमति

श्रीपार्श्वनाथबिंबं संवत् 1774 ना श्रावणसुदि 4 श्रीतपागच्छस्य द आसकरण अमृलक

(2213)

संवत् 1928 माहसुदि 13 बाई सरदारां ....

यंत्र पर

(२२१४)

ॐ सं. 1683 वर्षे ज्येष्ठ सु. 6 गुरौ जेसलमेरुसंघ कारित पट्टः तपागच्छाधिराजभट्टारकश्रीविजयदेवसूरिभिः प्रतिष्ठितः।।

श्री महावीर भवन में धर्मनाथ मंदिर

महावीर जैन भवन परिसर में श्री धर्मनाथ भगवान का मंदिर है जहाँ मूलनायक श्री धर्मनाथ भगवान है। उनके दोनों ओर श्री पार्श्वनाथ भगवान प्रतिमा विराजित है, श्वेत संगमरमर से सुशोभित है, मंदिर के सभामण्डप में अन्य तीर्थंकर भगवान व पद्मावती, नाकोड़ा भैरव की प्रतिमाएं विराजित है।

कहा जाता है कि यह मंदिर 50–60 वर्ष पूर्व ही नया बना है। जो बापना परिवार द्वारा निर्मित है।

पटवा सोनी की हवेली

महावीर जैन भवन से बाहर बाईं ओर पटवों की हवेलियां बनी हुई है। ये पांच भाईयों की है। ये पटवा वास्तविक रूप से बापना गौत्रीय ओसवाल जाति से है लेकिन पटवों का कार्य करने से पटवा कहलाने लगे। सन् 1974 में भारत सरकार द्वारा परमाणु परीक्षण किया गया तब तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इन हवेलियों को देखा, उस समय पटवा परिवार का कोई भी सदस्य नहीं रहता था, सभी भारत के विभिन्न शहरों में बस गए।

इनकी कारीगरी, कलाकृति, स्थापत्य कला का एक ज्वलंत उदाहरण रहा है उस समय इनको बेची जा रही थी, तब भारत सरकार ने 1974 में नियमानुसार अधिग्रहण कर सुरक्षित कर ली तब पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत हो गई। ये हवेलिया पाँच मंजिल की बनी हुई है। इनमें से दो भूमिगत है, उनमें सोना, हीरा, पन्ना आदि बहुमूल्य वस्तुएं रहती है, ऊपरी तीन मंजिल उनके व्यापार से सम्बन्धित मुनिम लोगों का कार्यालय व परिवार वालों का निवास स्थान थे।

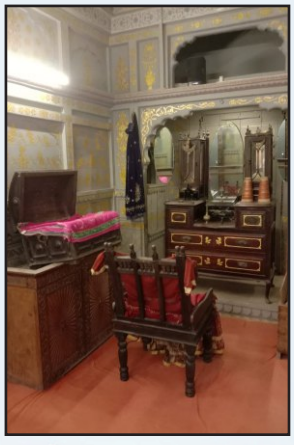

श्री आदिनाथ भगवान एवं श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, अमर सागर

यह तीर्थ जिला मुख्यालय से 8 कि.मी. दूरी पर स्थित है व मूल सागर से लगभग 1 कि.मी. दूरी पर स्थित है। इस मंदिर में उद्यान बना हुआ है। जैन साहित्य के अनुसार यहां पर तीन श्री आदिनाथ भगवान के मंदिर होने का उल्लेख है। जिसमें से एक बड़ा आदिनाथ व दूसरा छोटा आदिनाथ मंदिर कहलाता है।

प्रथम मंदिर वि.सं. 1903 में समग्र संघ द्वारा व शेष दो मंदिर श्री हिम्मतरामजी वि.सं. 1928 में दूसरा छोटा मंदिर सं. 1897 में श्री सवाईराम जी बापना ने बनवाया इन दोनों मंदिरों की प्रतिष्ठा जिन महेन्द्रसूरिजी म.सा. ने कराई। मन्दिर पत्थर की सुंदर कारीगरी, चित्रकारी से बना है। वर्तमान आदिनाथ व पार्श्वनाथ का मंदिर है जिसका वर्णन किया है :

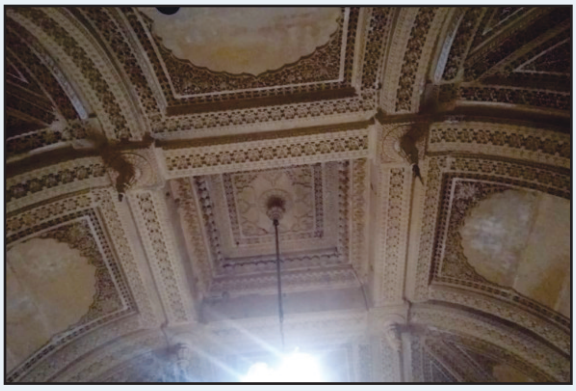

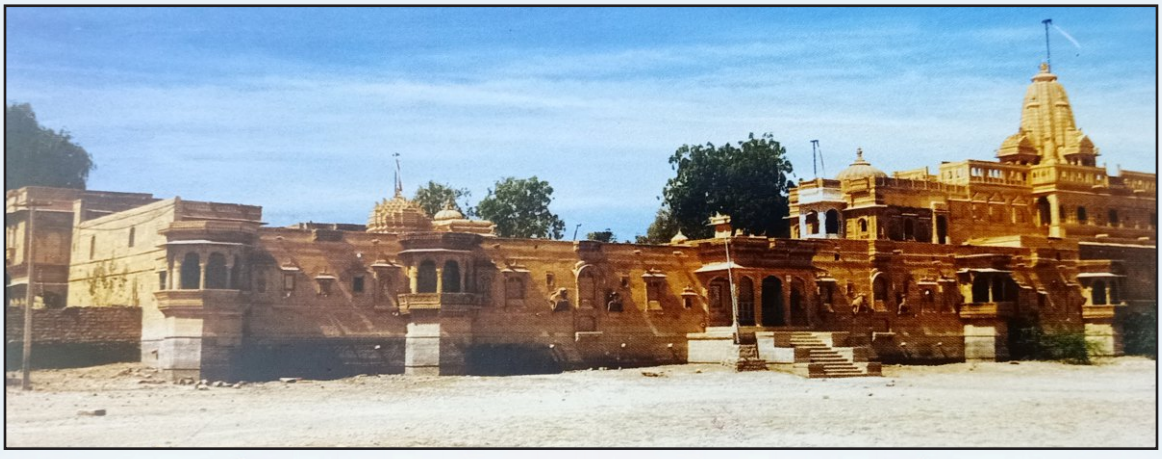

जैसलमेर से 5 किलोमीटर दूर अमरसागर नाम का सुन्दर उद्यान व सरोवर है। इसको महारावल श्री अमरसिंह ने सं. 1716 से 1758 के बीच बनाया। यह स्थान प्रकृति की देन है। यहां के निवासियों ने चारों ओर उपवन बनाए है जिससे उसकी सुंदरता बढ़ गई है।

यहां पर पीले पत्थरों की खानें है जिससे इन पत्थरों से कारीगरी की हुई है। यह भी सत्य है कि वास्तुकला की दृष्टि से ये पत्थर उपयोगी है। वर्षा होने पर भी पीले पत्थर व उन पर की गई खुदाई और अधिक स्पष्ट हो जाती है जिसके फलस्वरूप ये पत्थर राज्य व देश विदेश में प्रसिद्ध है।

इस सरोवर के पास सेठ सवाई राव हिम्मतराम जी का सुंदर बाग है। इसके दाहिनी ओर एक मंदिर है तथा पीले पत्थर के बीच में एक श्रीनाथ की मूर्ति है जिससे सुंदरता बढ़ जाती है। इसी बाग में श्री हिमाजी मंदिर, श्री आदिनाथ व श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा का मंदिर वि.सं. 1928 में बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा खरतरगच्छ के आचार्य जिन महेन्द्रसूरि जी द्वारा सम्पन्न हुई।

मंदिर के चारों ओर खुदाई व जाली बनी हुई है जो इसकी सुंदरता को बढ़ाती है। ऊपरी भाग में पत्थर का दरवाजा है। मंदिर का सभामण्डप कलापूर्ण व दर्शनीय है। इस मंदिर में खुदाई का कार्य पत्थर पर गहराई से हुआ।

मंदिर की अलग से दादावाड़ी भी है जिसमें तृतीय दादा कुशल सुरि के चरण पादुका है यद्यपि वर्तमान में बाग उजड़ा हुआ लगता है। सामने वाले छज्जों, गवाक्ष व सूक्ष्म जालियों की सुंदरता आकर्षक है जिससे इसकी सुंदरता, कलापूर्णता के श्री पुरणमल जी नाहर (कलकृंणा) ने प्रशंसा की है। यहां पर 66 पंक्तियों का शिलालेख है, जिसका पुरातत्ववेता श्री जिनविजय जी ने जैन संशोधन पत्रिका के प्रथम खंड में उल्लेख किया है।

उस समय हजारों श्रावकों का एक संघ भी निकला जिसमें कई सेठ–साहुकारों ने पधरावणी की। श्री, प्रभाना की प्रशस्ति में, जिसका जिन विजय जी ने प्रथम खण्ड के पृष्ठ 108 पर वर्णन किया। यह भी दर्शाया कि मार्ग में राजदरबारों, सेठ साहुकारों ने ऊँट, घोड़े दिए और राजदरबारों जिसमें टोंक के नवाब भी थे उन्होंने संघ की सुरक्षा के लिए घोड़े आदि की व्यवस्था की।

इस संघ की यादगार में ग्रन्थ में दो मंदिर भी निर्मित हुए जिसमें एक श्री सवाईराम जी प्रतापचन्द जी ने वि.सं. 1897 में व ओसवाल समाज ने वि.सं. 1903 में बनाया। इस मंदिर को डुंगरसि का मंदिर भी कहते हैं। इस मंदिर में प्रतिष्ठित प्रतिमा बहुत ही सुंदर है तथा यह प्रतिमा विक्रमपुर से लाई गई है जो 1500 वर्ष प्राचीन मानी गई है।

श्री सवाईराम जी, डुंगरसिंह यति के बगीचे भी दर्शनीय है। इन दोनों मंदिरों में दादा जिनकुशल के चरण पादुका है दादावाड़ी भी है। यहां के अमरबाग व अन्य उपवन इस तीर्थ की शोभा है।

अमरसागर

श्री आदिनाथ जी का मंदिर।

प्रशस्ति।

[२५१८]

(1) ।। श्री आदिनाथाय नमः।।

(2) ।। ॐ ।। प्रीयात्सदा जगन्नायकजैनचन्द्रः सदा निरस्ताखिलशिष्टतंद्रः। स

(3) दिष्टशिष्टीकृतसाधुधर्मा सत्तीर्थकृन्निश्चितदृष्टिरागः ।। 1 ।। पूज्यं श्रीजिनराजि-

(4) राजिचरणां भोजद्वयंनिर्मलं ये भव्याः स्फुरदुज्ज्वलेनमनसा ध्यायंति सौ-

(5) ख्यार्थिनः। तेषां सर्वसमृद्धिवृद्धिरनिशं प्रादुर्भवेत्मंदिरे कष्टादीनि परिव्रजंति

(6) सहसा दूरे दुरंतानि च ।। 2 ।। सकलार्हत्प्रतिष्ठानमधिष्ठानंशिवश्रियः। भूर्भुव :

(7) स्वस्त्रयीशानमार्हंत्यप्रणिदध्महे ।। 3 ।। नामाकृतिद्रव्यभावैः पुनंतस्त्रिजगज्जनं। क्षेत्रेका-

(8) ले च सर्वस्मिन्नर्हतः समुपास्म्यहं ।। 4 ।। आदिमं पृथिवीनाथमादिमं निः प

(9) रिग्रहं। आदिमं तीर्थनाथं च ऋषभस्वामिनंस्तुमः 5 इति मंगलाचरणं।।

(10) स्वस्ति श्रीविक्रमादित्यराज्यात्संवत् 1903 शालवाहन कृत शाके 1768 प्रव-

(11) र्त्तमाने मासोत्तममासे फाल्गुण मासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ शुक्रवारे घट्य।

(12) 54 पलानि 34 रवेतीनक्षत्रे घट्य 14 पलानि 38 तत्समये। महाराजाधिराज म

(13) हारावलजी श्री 108 श्रीरणजीतसिंहजी विजयराज्ये। जं.। यु.। भ.। श्री जिनचं

(14) द्रसूरि तत्पट्टे श्रीजिनहर्षसूरि तत्पट्टप्रभाकर श्रीजिनमहेन्द्रसूरि धर्म्मराज्ये श्री

(15) जिनचंद्रसूरि। वृहत्शिष्य । पं. । श्रीजीतरंगगणिना उपदेशात् श्रीआदिनाथ-

(16) मंदिरं कारितं श्रीसंघेन । प्र.। कुंगरसी मुनिना प्रतिष्ठं च । लि. । पं. । दानमल्लेन। श्रीरस्तु।

मूर्त्ति पर।

[२५१९]

सं. 1703 ..... श्रीश्रेयासबिंबं

[२५२०]

सं. 1803 ..... पार्श्वनाथ छोटी

पंचतीर्थियों पर।

ॐ ।। सं. 1515 वर्षे ..... श्रीउकेशवंशे परिक्षिगोत्रे प. जयता भरमादे पुत्र प. डूंगरसिंहेन भा. प्रेमलदे पुत्र नगराज गांगा नयणा नरपाल सहितेन स्वश्रेयसे श्री सुविधिजिनबिंबं का. प्र. श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनचन्द्रसूरिभिः।

[२५२२]

।। सं. 1532 वर्षे वैशाष वदि 5 सोमे श्रीश्रीमालज्ञा. सं. वेलाउल भ. वेनुलदे सु. सं. कर्घूणेन भा. नानू सु. स. सामल पोमादि कुंटुंबयुतेन सुत गहिला श्रेयसे श्रीधर्मनाथबिंबं श्रीपूर्णिमापक्षे श्रीगुणधीरसूरीणामुपदेशेन कारितं प्रतिष्ठितं च विधिना। भांधरीघ (?) ग्रामे।।

[२५२३]

संव. 1536 वर्षे फागुण सु. 5 दिने उकेशवंशे णधरचोपड़ागोत्रे सं. सच्चा भार्या शृंगारदे पुत्र सं. जिणदत्त सुश्रावकेण भार्या लषाई पु. अमरा थावर पौ. हीरादि परिवारयुतेन। श्रीशांतिनाथबिंबं का. प्र. श्रीखरतरग. श्रीजिनभद्रसूरिपट्टे श्रीजिनचंद्रसूरिभिः।। श्री

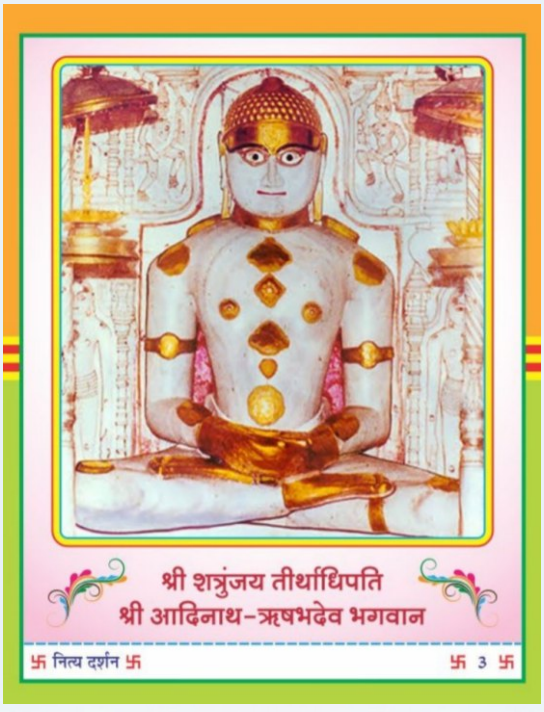

ब्रह्मसर तीर्थ

यह तीर्थ जैसलमेर से अमर सागर होते ही महल रामकुण्डा नमक महंत का आश्रम होते हुए ब्रह्मसर 15 कि.मी. दूर स्थित है। यहां के पास रूपसी गांव है। जहां के लोगों का व्यवसाय पशुपालन व कृषि है। प्राचीन रामकुण्डा आश्रम गुरूकुल के नाम से जाना जाता था। इस मठ में ब्राह्मण मोहनलाल की आज्ञा से अमोलकचंद पुत्र माणकलाल बागरेचा महाराजा बेरी साल के समय में वि.सं. 1844 माघ सुदि 8 को श्री पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर बनवाकर प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई। श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा आकर्षक है।

यहां से 2 किलोमीटर दूर श्री जिन कुशलसूरि जी का स्थान व कुण्ड है । इस स्थान के बारे में यह बताया जाता है कि देराऊल नगर (पाकिस्तान) में लूणिया परिवार पर जुल्म हो रहे

थे जो सहन शक्ति से बाहर हो गये तब उस परिवार ने गुरूदेव श्री जिन कुशल सूरि जी से निवेदन करते हुए हल के लिए सुझाव मांगे। तब उन्होंने कहा कि आप सभी लोग राजपुताना (राजस्थान) चले जाओ, जो थोड़ी दूर ही ब्रह्मसर गांव में जाकर बस जाओ और यहां से रवाना हो जाने पर मार्ग में वापस पीछे की ओर मुड़कर मत देखना।

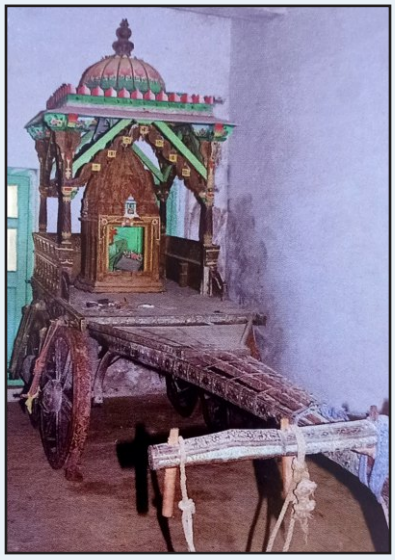

वह सेठ परिवार ऊँट पर माल लादकर प्रस्थान कर गये काफी देर जाने के बाद गांव के नजदीक दिखने पर उन्होंने पीछे पलटकर देखा तो पीछे गुरूदेव को आते हुए देखा तब गुरूदेव वहीं रूक गए और कहा कि उन्होंने कहा कि पीछे मुड़कर मत देखना और गुरूदेव अदृश्य हो गये। सेठ ने गुरूदेव जहां पर ठहरे हुए दिखाई दिये वहां पर एक चबूतरा बनाकर चरण पादुका स्थापित किए। यहां पर स्थापना के पूर्व एक थूम्भशाला की स्थापना वि.सं. 1892 में हुई।

इस दादावाड़ी के सामने एक वैष्णव का तीर्थ जिसको वैशाली कहा जाता है यह स्थान बौद्धकालीन माना जाता है। यहां पर वैशाली शुक्ला 15 को बहुत बड़ा मेला लगता है। वैशाखी व ब्रह्मसर के बीच एक गडवी नाम की बोरी है। जहां पूर्व में दुष्काल के समय जैसलमेर की महिलाए पानी लाया करती थी।

वर्तमान में श्री विमलनाथ भगवान का मंदिर है, यहां पर ही दादावाड़ी है। जहाँ चारों दादाओं की चरण पादुकाएं हैं। वर्तमान में निर्माणधीन है। चारों ओर बगीचा है।

श्री पार्श्वनाथजी का मंदिर।

शिलालेख

[२५८१]

(1) ।। स्वस्तिश्री संवत् 1944 शाके।।
(2) 1809 माघ शुक्ल 8 शनौ प्रवर्त्त।।
(3) माने ब्रह्मसर ग्रामे पार्श्वजिनचैत्यं
(4) महारावलजी श्री श्री 105 श्रै रिशा
(5) लजीविजयराज्ये कारापित आशवंशे
(6) वाग (रे) चा गोत्रे गिरधारीलाल भार्या सिण
(7) गारी तत्पुत्र हीरालालेन प्रतिष्ठितं जै
(8) नभिक्षू मोहनमुनिना प्रेरक वाग (रे) चा
(9) अमोलखचन्द पुत्र माणकलालेन कृ
(10) तं गजधर महादान पुत्र आदम ना
(11) मेण श्रेयोभूयात् शुभं भवतु

मूलनायकजी पर।

[२५८२]

(1) ।। निश्शेषानंता मंडलेन्द्र श्रीमद्विक्रमादित्यराज्यात्संव्वद्दिग्गजनेत्रांकोर्व्विमिते मासोत्तम माघार्ज्जुन त्रयोदश्यां
(2) गुरुयुतायां कम (1) वास्यां।। सं. 1928 का शाके 1793 प्रवर्त्तमाने माघ शुद 13 गुरौ श्रीपार्श्वजिनबिं
(3) बं प्रतिष्ठितं श्रीमद्वृहत्खरतरगच्छाधीश्वर श्रीमन्महेन्द्रसूरि पट्टप्रभाकर जं। यु। प्र । सकल भ । चक्रचूड़ामणि
(4) श्रीजिनमुक्तिसूरिभिः श्रीमन्महाराजाधिराजा महारावलजी श्रीवैरिशालजी विजयराज्ये कारितं च श्रीजेशल-
(5) .....

पंचतीर्थियों पर।

[२५८३]

सं. 1513 वर्षे प्राग्वाट मं. केल्हा भा. कील्हणदे सुत मं. नाना चांपाकेन भा. गुरी पु. मांडणादि कुटुम्बयुतेन स्वपितृव्य मं. कान्हा श्रेयसे श्रीनमिनाथबिंबं का. प्रतिष्ठितं तपा श्रीसोमसुन्दरसूरि शिष्य श्रीरत्नशेखरसूरिभिः ..... ल दुर्गे।

[२५८४]

।। संवत् 1524 वर्षे वैशाख सुदि 3 सोमे श्रीमाल ज्ञातीय व्य. रत्ना भा. रत्नादे सु. हरीया भा. लाली सु. लषमणाभिधेन स्वपितृ श्रेयार्थं श्रीशांतिनाथबिंबं श्री पूर्णिमापक्षे श्रीपुण्यरत्नसूरीणामुपदेशेन कारि. प्र. विधिना वाराहि ग्रामे।।

लोद्रवा तीर्थ

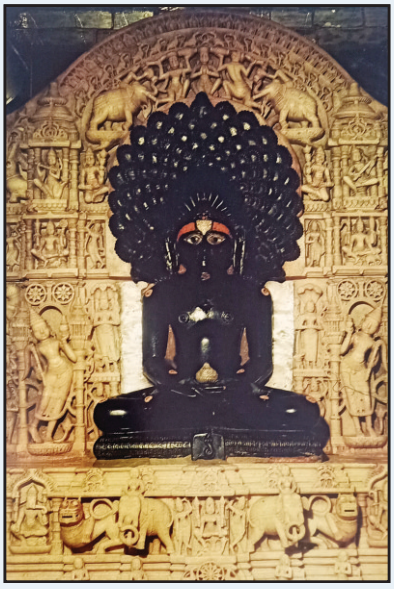

यह तीर्थ जैसलमेर से 15 किलोमीटर दूर स्थित है इस तीर्थ की यात्रा करने के लिए अमरसागर होकर टेक्सीयों बस से जाना होता है। मार्ग में सड़क के दोनों ओर पीले पत्थर की चट्टानें चमकती हुई दिखाई देती है। यह नगर बहुत प्राचीन है, पूर्व में जैसलमेर की राजधानी रही है, प्राचीनकाल में यहां पर जैनों की संख्या बहुत अधिक थी इसकी वजह जैन संस्कृति व मंदिर थे। यह नगर 7–8वीं शताब्दी का होना बताया जाता है। यहां पर मंदिरों की संख्या भी अधिक रही।

सर्वप्रथम जब मुस्लिम लोग बिलोचिस्तान, सिन्ध होकर इसी ओर तो यहां की वैभवता को देखकर यहाँ की संस्कृति पर चोट पहुँचाई व मंदिरों को नष्ट किया।

इतिहास के आधार पर मोहम्मद गौरी ने यहाँ के बहुत से मंदिरों को नष्ट किया लेकिन यह सम्भव है कि इससे पूर्व भी मुस्लिम आक्रमण होते रहे है। यहाँ पर प्राचीन वास्तुकला एवं मंदिरों के भग्नावेष आज भी दिखाई देते है। यह नगर जनसंख्या की दृष्टि से काफी बड़ा था यह एक व्यापारिक केन्द्र रहा है। इस नगर में बनी हुई विशाल हवेलियां को देखकर इसको अनुभव किया जा सकता है। इन हवेलियों में वर्तमान में दो प्रमुख हवेली है।

यह नगर विश्व में सबसे बड़ा नगर एवं भारत का प्राचीन विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है। इन्हीं लोद्रवा नाम के राजपूत से इस नगर का नाम लोद्रवा पड़ा। इतिहास के आधार पर सर्वप्रथम देवराज ने अपनी राजधानी देराऊल स्थापित की है। बाद में लोद्रवा राजपूत को पराजित कर वि.सं. 1082 में राजधानी बनाई। रावल की उपाधि से स्वयं को विभूषित किया है। यह नगर काफी वैभवशाली था जो वर्तमान में नही है।

लोद्रवा जैन मंदिर के गर्भ द्वार के दाईं ओर 22 x 26" सहज कीर्तिगणी का लिखा हुआ एक शतदल पद्य यंत्र है। जिसमें प्रशस्ति का शिलालेख भी है। प्रशस्तिका के अनुसार पच्चीस चतुष्पद श्लोक 100 पंखुड़िया के रूप में 100 चरण है। प्रत्येक चरण का अंतिम अक्षर मंत्र है। मध्य में केवल ''मं'' है। एक ही अक्षर से शब्द का प्रारम्भ कर अंत करना बहुत कठिन है।

इस यंत्र के संबंध में श्री पुरणचन्द नाहर पुरातत्ववेता ने लिखा है। प्राचीनकाल में सगर नाम का एक राजा यहां राज करता था, उसके राजघर व श्रीधर नाम के दो पुत्र थे। इन दोनों ने गुरूदेव की आज्ञा से जैन धर्म को अंगीकार कर चिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर बनाया। इस मुस्लिम आक्रमण से यह नगर नष्ट हो गया। इस यंत्र से ज्ञात होता है कि इसके बाद सुखीमानी भाई ने इस मंदिर को पुनः बनाया जिसके लिए एक लेख मिला है। सेठ खीमाजी भाई के अधूरे कार्य को उसके पुत्र पुनजी भाई ने पूरा किया। लेकिन वास्तविक जीर्णोद्धार जैसलमेर के सेठ थारूहशाह ने किया और प्राचीन नींव पर नूतन मंदिर बनवाए और नई प्रतिमा की प्रतिष्ठा श्री जिनसूरि जी द्वारा वि.सं. 1675 मिगसिर सुदि 12 को सम्पन्न कराई यहां एक ही कोट भैरू पर्वत के भाव पर पांच मंदिर बने हुए है। कवि श्री रवि जेठी द्वारा रचित स्तवन में लिखा है कि सेठधारूशा धनी व पुन्यशाली था धनवान होने की कथा की एक कहानी भी बड़ी आश्चर्यजनक है।

सेठ का घी का व्यापार था, घी खरीदकर बेचने का कार्य करते थे। एक दिन एक स्त्री घी बेचने आई। उसने घी लिया तो क्या होता है कि घी समाप्त ही नहीं होता। सेठ जी आश्चर्यचकित होकर घड़े को नीचे से

देखा तो उसके नीचे इढाणी पर चित्रबेल, अमरबेल उन्हें मिली तो उसने उस स्त्री को कुछ काम बताकर दूसरे विचारों में डाल दिया तब वह इढाणी स्वयं ने ले ली और उसे अच्छी इढाणी दी। देवयोग से इढाणी बहुत अच्छी थी। इन बेलो का महत्व यह है कि इनके होने से कोई भी वस्तु कभी भी समाप्त नहीं होती। इस प्रकार धनी होकर रूपये अच्छे कार्यों में खर्च करते रहे।

उन्होंने जैसलमेर किले पर भव्य मंदिर बनवाया व अपने निजी घर में गृह मंदिर बहुत सुंदर ढंग से बनवाया।

इसके गौरव को अक्षुण बनाए रखा, इसकी कारीगरी विचित्र दिखती है। इसकी शैली में आर्य शैली का प्रयोग अधिक किया। मंडप की छत छः पैनल में विभाजित की गई, सभी जगह होरीजेन्टल शैली का प्रयोग बहुतायत के साथ है। मेहराबों का यहाँ अभाव है।

प्रवेश द्वार के तोरण की कला तो अद्वितीय है और यह कला विचित्र है। खुदाई बहुत ही बारीक है। जिसको शब्दों में कहना कठिन है। मूर्तियां ऐसी बनी है कि जितनी कला है वह सभी प्रकार से इन मूर्तियों को बनाकर शिल्पकारो ने ढाल दी। इन प्रतिमाओं पर एक स्तम्भ की कारीगर व शिखर का दृश्य दर्शनीय है, ऐसी कारीगरी अन्यत्र नहीं मिलती। यहां की प्रतिमाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिमा ढालने के कार्य में कारीगरों में एक प्रतियोगिता हो रही है।

तोरण यद्यपि मंदिर का भाग ही होता है लेकिन इसकी बनावट ऐसी है कि जैसे यह मूल मंदिर है। इसको देखकर भ्रम हो जाता है इस मंदिर का यह तोरण यदि हटा दिया जाय तो मंदिर की सुंदरता समाप्त हो जाती है। मुख्य विशेषता बारीक खुदाई में है।

मंदिर का कार्य होते समय सेठ थारूहशाह ने एक शत्रुंजय के संघ का आयोजन किया और बाद में जब वापस आए तो देखा कि मंदिर तो बन गया है लेकिन प्रतिमा नहीं है। इस बारे में सोचने लगे। इसी बीच मूर्तिकार पाटण से 2 मूर्तियां लेकर मुल्तान जा रहे थे तब रात्रि हो जाने से यहां पर ही रूक गये। संयोगवश मूर्तिकार को स्वप्न आया कि थारूहशाह नामक सेठ को ये दो मूर्तियां दे देना और जो रूपये देवे वो ले ले।

इसी प्रकार से सेठ को भी स्वप्न आया कि मूर्तिकार आ रहे हैं, उनको धनराशि देकर ये मूर्तियां ले लेंवे। दोनों पक्षकार एक दूसरे की तलाश करने लगे और अंत में वे दोनों मिले और मूर्तियों को देखी। तब सेठ ने कहा कि मूर्ति के बराबर सोना दिया जायेगा। मूर्तिकार ने सहर्ष स्वीकृति दी और एक तराजू के एक पलड़े में सेठ की पत्नी ने अपना जेवर रखा व दूसरे में मूर्ति रखी।

ऐसे समय में सेठानी से जेठानी ने कहा सोचो कि उसके जेवर भी रखे, गहने खोले, वापस विचार आया कि देवर जी भी यह न समझ ले कि वह बड़ी हो गई।

मूर्तिकार राशि लेकर चले गए। सेठ जी ने इन्हीं प्रतिमाओं व अन्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई। कई प्रतिमाओं पर वि.सं. 11वीं व 12वीं शताब्दी की दिखाई देती है लेकिन मूलनायक की प्रतिमा पर वि.सं. 1675 का लेख है।

मंदिर के दाईं ओर समवसरण पर अष्टापद गिरी व कल्पवृक्ष की रचना है। अनेक प्रकार के कृत्रिम फल जिस पर एक लगे है, आकर्षक है, यह कल्पवृक्ष से बना हुआ। सेठ थारूशाह शत्रुंजय संघ ले गए तब एक लकड़ी का रथ लेकर जिसमें पाटण से मूर्तियां लाए थे।

श्री पार्श्वचन्द्र भगवान पन्ने की मूर्ति रखी थी।

आजकल लोद्रवा एक सामान्य स्थिति का ग्राम मात्र रह गया है परन्तु प्राचीनकाल में "लोद्रपुर" नामक एक बड़ा समृद्धिशाली राज्य था। यह स्थान जैसलमेर से पश्चिम में लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर है और यहां के श्री पार्श्वनाथजी का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। चारों कोने पर चार छोटे मंदिर है और मध्य में यह मूल मंदिर बना हुआ है।

ये सब मंदिर एक ही अहाते में परकोटे से घिरे हुए है। फाटक के बांये तरफ क्षेत्रपाल और आचार्यों के कई एक चरण भी प्रतिष्ठित है।

यह प्रशस्ति का शिलालेख मंदिर के गर्भद्वार के बांये तरफ दीवार पर लगा हुआ है। इसकी लंबाई 22 इंच और चौड़ाई 17 ईच है।

यह शतदलपद्मयंत्र की प्रशस्ति अपूर्व है। अद्यावधि मेरे देखने में जितने प्रशस्ति शिलालेखादि आये है उस में अलंकार शास्त्र का ऐसा नमूना नहीं मिला है। पाठकों को चित्र से अच्छी तरह ज्ञात हो जायेगा कि यह शतदलपद्मयंत्र जो बीच में खुदा हुआ है उसके सौ पखरियों में पच्चीस श्लोकों के सौ चरण है और केन्द्र में 'मं' जो अक्षर है वही ये सब चरणों के अंत का अक्षर है। शब्दों के आदि अक्षर लेकर पद बनाना उतना कठिन नहीं है जितना अंत का अक्षर मिलाना कष्ट साध्य है।

श्री जैसलमेर–निवासी, ओसवाल कुल भूषण, खरतरगच्छीय संघवी थाहरूसाह भणशाली ने सं. 1675 में यह पार्श्वनाथ जी के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। उसी उत्सव पर आये हुए साधु मंडलियों में से सहजकीर्त्ति गणि नामक किसी विद्वान की यह कीर्ति है।

ज्ञान भण्डार में सुरक्षित है। यह अष्टापद की रचना के चारो ओर पंचतीर्थी की कारीगरी है जो प्रतिदिन प्रक्षाल के कारण धूमिल हो रही है। यह मंदिर यहां का आकर्षण है।

अष्टापद के सामने सभामण्डप की दीवार पर एक छेद है और कहा जाता है कि वहां से एक सर्प आता है, दर्शन देकर अदृश्य हो जाता है उसके दर्शन के बाद कार्य सिद्ध हुआ यह दंत कहानी है कि यदि नागदेव इष्ट अधिष्टायक देव है। इस मंदिर पर ध्वजा चोरड़िया भाइयों ने वि.सं. 1999 की माघ शुक्ला 4 को चढ़ायी थी।

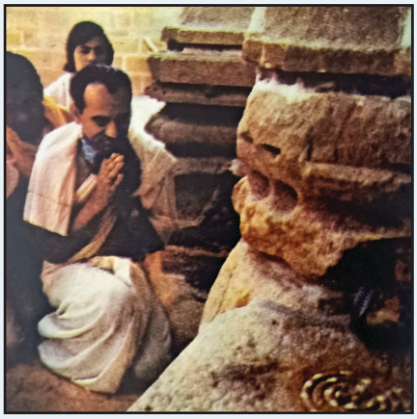

हिंगलाज देवी का प्राचीन मंदिर, पंचमुखी महादेव व मूमूल की मेडी विद्यमान है। हिंगलाज मंदिर के पास एक जैन मंदिर है जो खण्डहर है। यहां पर तीन उपाश्रय है। इसके लिए गौत्रीय के अनुसार ठहरने का साधन है। साथ में मंदिर के बाहर धर्मशाला भी विद्यमान है। महल, दुर्ग देखा जाता है लोद्रवा नगर में 12 प्रवेश द्वार थे जो वर्तमान में नहीं है। काक नदी की कथा महत्वपूर्ण है।

लोद्रवा में प्रवेश करते समय ठाकुरदास भाटिया द्वारा निर्मित भव्य, सुन्दर कलापूर्ण दुकानें व नथमल जी गोथदान जी की हवेली देखी जाती है। गोथदान की हवेली दर्शनीय है। इसके सामने 7 पत्थरों के झरोखे बहुत ही आकर्षक है। दोनों भाईयों द्वारा बनाए गए अलग कारीगरी से। स्मृति में मूमल मेड़ी है।

यह नदी कुंवर महेन्द्र व मूमल की प्रणय लीलाओं से प्रसिद्ध है। यहां पर मूमल से मिलने अमरकोट का राजकुमार महेन्द्र ऊँटनी पर बैठकर आया करता था।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण लोद्रवा तीर्थ :

प्राचीनकाल में लोद्रवा नगर में सगरनाम का राजा राज्य करता था उसके दो पुत्र थे जिनके नाम ये है :

1) श्री धर 2) श्री राजघर

इन्होंने जैन मुनि का प्रवचन सुनकर जैन धर्म अंगीकार कर लिया ओर उन्होंने लोद्रवा में चिंतामणि पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर निर्माण कराकर प्रतिमा स्थापित कराई। मोहम्मद गजनवी के आक्रमण काल में उसने जैन संस्कृति को नष्ट करते हुए मंदिर को भग्नावेश में बदल दिया। इसके बाद सेठ थारूसा. भण्डसाली ने शत्रुंजय यात्रा संघ सम्पन्न कर वि.सं. 1675 में चिंतामणि पार्श्वनाथ का निर्माण करा प्रतिष्ठा सं. 1682 में सम्पन्न हुई। राजा देवराज ने सं. 909 में तालाब, आदि कार्य कराए।

इसी परिवार ने मरण, मगजी व चामुण्ड सं. 1021, 1065, 1062 (ईत्र) मान जी के पुत्र

मूल मंदिर के चारो ओर मंदिर बने हुए है। देराऊर नाम से प्रसिद्ध वर्तमान में भागलपुर में स्थित हैं श्री जिन भद्रसूरि स्तवन में इस मंदिर की वर्णन विस्तृत रूप से किया जो लेख में विद्यमान है।

शतदलपद्म यंत्र

[प्रशस्ति]

[२५४३]

(1) श्रीनिवासं सुरश्रेणिसेव्यक्रमं
(2) वामकामाग्निसंतापनीरोपमं।
(3) माधवेशादिदेवाधिकोपक्रमं
(4) तत्त्वसंज्ञान विज्ञानभव्याश्रमं।। 1 ।।
(5) नव्यनीरागताकेलिकर्म्मक्षमं
(6) यं(य)स्य भव्यैर्भजे नाम संपद्रमं।
(7) नीरसं पापहं स्मर्यते सत्तमं
(8) तिग्ममोहार्तिविध्वंसतायाभ्रमं।। 2 ।।
(9) लब्धप्रमोदजनकादरसौख्यधामं
(10) तापाधिकप्रमदसागरमस्तकामं।
(11) घंटारवप्रकटिताद्भुतकीर्त्तिरामं
(12) नक्षत्रराजिरजना(नी)शनताभिरामं।। 3 ।।
(13) घंटापथप्रथितकीर्त्तिरमोपयामं
(14) नागाधिपः परमभक्तिवशातसवामं।
(15) गंभीरधीरसमतामयमाजगामं
(16) मं(म)र्त्यानतं नमत तं जिनपंक्तिकामं।। 4 ।।
(17) संसारकांतारमपास्यनाम
(18) कल्याणमालास्पदमस्तशामं।
(19) लाभाय बभ्राम तवाविरामं
(20) लोभाभिभूतः श्रितरागधूमं।। 5 ।।
(21) कर्म्मणां राशिरस्तोकलोकोद्गम
(22) संसृतेः कारणं मे जिनेशावमं।
(23) पूर्ण्णपुण्याढ्य दुःखं विधत्तेंऽतिमं
(24) र्ण्ण(न)क्षमस्त्वां विना कोऽपि तं दुर्गमं।। 6 ।।
(25) कार्म्मणं निर्वृतेर्हंतुमन्योऽसमः
(26) यं(य)क्षराट्पूज्य तेनोच्यते निर्ममं।
(27) श्रीपते तं जहि द्राग् विधायोद्यमं
(28) दानशौंडाद्य मे देहि रूद्धिप्रमं।। 7 ।।
(29) यस्य कृपाजलधेर्विश्रामं
(30) कंठगताशुसुभटसंग्रामं।
(31) भयजनकव्यायामं
(32) जेतारं जगतः श्रितयामं।। 8 ।।
(33) कक्षीकृतवसुभृत्पुर्ग्रामं
(34) लापोच्चारमहामं।
(35) केशोच्चयमिह नयने क्षामं
(36) लिंगति कमलां कुरुते क्षेमं।। 9 ।।
(37) कलयति जगताप्रेमं
(38) लंभयति सौख्य पटलमुद्दामं।
(39) कालं हंति च गतपरिणामं
(40) महतंमहिमस्तोमं।। 10 ।।
(41) रसनयेप्सितदानसुरद्रुमं
(42) हितमहीरुहवृद्धिजलोत्तमं।
(43) तं(त)रुक्षपुण्यरमोदयसंगमं
(44) समरसामृतसुंदरसंयमं।। 11 ।।
(45) हिनस्ति सद्भूयानवशातस्य मध्यमं
(46) तं तीर्थनाथं स्वमतःप्लवंगमं।

(47) सुरासुराधीशममोघनैयमं
(48) रैः नाथसंपूजितपद्युगंस्तुमं।। 12 ।।
(49) संसारमालाकुलचित्तमादिमं
(50) सास्त्रार्थसंवेदनशून्यमश्रमं।
(51) रम्याप्तभावस्थितपूर्णचिद्दमं
(52) सर्पाकितः शोषितपापकर्द्दमः।। 13 ।।
(53) रत्नत्रयालंकृतनित्यहेम
(54) सीमाद्रिसारोपमसत्त्वसोम।
(55) शोभामयो ज्ञानमयं विसामं
(56) षक्वर्ग मां देव विधेह्यकामं।। 14 ।।
(57) भावविभासकनष्टविलोमं
(58) स्कंदितस्कंदलतं प्रणमामं।
(59) रंगपतंगनिवारण सुभीमं
(60) कंबुदानं जिनपहत ते भौमं।। 15 ।।
(61) मंत्रेश्वरः पार्श्वपतिः परिश्रमं
(62) लालाश्रितस्यापनया मनोरमं।
(63) कर्मोस्थितं मे जिनसाधु नैगमं
(64) रंभाविलासालसनेत्रनिर्गमं।। 16 ।।
(65) समितिसारशरीरमविभ्रमं
(66) हरिनतोत्तमभूरिगमागमं।
(67) श्रयत तं नितमानभुजंगमं
(68) फलसमृद्धिविधानपराक्रमं।। 17 ।।
(69) णम्रैर्यशः सृजति शं जिनसार्व्वभौमः
(70) तारस्वरेण विबुधैः श्रित शतैर्होम।
(71) शोकारिमारिविरहयतवात्तदामं
(72) भव्यैः स्तुतं निहतदुर्मतदंडषमं।। 18 ।।
(73) माद्यांबुजध्वंसविधौ महद्धिमं
(74) न वाजयत्याशु मनस्तुरंगमं।
(75) मंत्रोपमं ते जिन राम पंचमं
(76) स्तवेन युक्तं गुणरत्नकुट्टिमं।। 19 ।।
(77) कलिशैलोरु व्याधाम
(78) माहात्म्यं हृदयंगमं।
(79) लब्धश्रितवसुश्रामं
(80) यंतिवर्गस्तुतं नुमं।। 20 ।।
(81) लोकोत्पत्तिविनाशसंस्थितिविदां मुख्यं जिनं वै स्तमं
(82) द्रव्यारक्तसमाधरं नमत भो पूजां वगं पाश्चिमं।
(83) परपक्षस्य तव स्तवं त्वन्निमित्तकरींद्रगे
(84) तत्तङ्गवमयं वस वदतस्त्रैकाभ्यस्तर्वंद।। 21 ।।
(85) नयनाननसद्रोमं
(86) संततिं तव जंगम।
(87) स्थावराशु(सु)मतां स्याम
(88) नयते शमकृत्रिमं।। 22 ।।
(89) दासानुदासस्य मम
(90) नवानंद विहंगमं।
(91) माद्यति प्राप्य सुमं
(92) नंपा(नया)क्षतां महाद्रुमं।। 23 ।।
(93) क्षमाबोहित्थनिर्यामं
(94) मानवार्च्यं महाक्षमं।
(95) गुणिपूज्यं प्रीणयाम
(96) रुं(रु)चिं स्तौमि नमं नमं।। 24 ।।
(97) स्मरंति यं सुंदरयक्षकर्दमं
(98) रागात् समादाय महंति कौकुमं।
(99) मिथो मिलित्वा मवुजाङ्यकुंकुमं
(100) चंद्राननं तं प्रविलोकताद्रमं।। 25 ।।

(1) श्रीलोद्रव नगरे। श्रीवृहत्खरतरगच्छाधीशैः
(2) सं. 1675 मार्गशीर्ष सुदि 15 गुरौ भांकशालिक श्रीमल्ल भार्या चांपलदे पुत्ररत्न
(3) थाहरुकेन भार्या कनकादे पुत्र हरराज मेघराजादियुतेन श्रीचिन्तामणिपार्श्वनाथ
(4) बिंबं का. प्र. भ. युगप्रधान श्रीजिनसिंहसूरिपट्टालंकार भ. श्रीजिनराजसूरिभिः प्रतिष्ठितं।।

पाट पर।

[२५४५]

(1) संवत् 1911 मिती ज्येष्ठ सुदि 11 तिथौ श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथजी रै सिंघासण

रौप्य गट्टाजी पर।

।। बादरमलजी जोगीदासाणी लूनावत रुपसिया वा. सं. 1933 जा ।। कात्तक
श्रीनवपदजी महाराज को चढ़ाई चा सालूदे देदारामजी साणी गांम वैसा वासी श्रीलोद्रवेजी चढ़ायो सं. 1941 रा मिगसर सुदि 3 । सरूपचंद का

[२५६१]

श्रीचिंतामण पार्श्वनाथजी रै आगै फाती चढ़ायो कोई उठावण पावै नही चंद्रवपुरे नवलषोजी रे मंदर में जीदोणी .....घरवालो लछमो चढायो सं. 1926 पोस सुदि 9 रवीवार

[२५६२]

(1) सं. 1693 मार्गशीर्ष सुदि 9 सं. थाहरू क यु
(2) तेन भगिनी सजना स्वमातृ चापलदे भरां
(3) वी पादुकाः ।। प्र. श्रीजिनराजसूरि .....

बाहर के चरणों पर।

[२५६३]

।। सं. 1790 मिगसर वदि 9 दिने श्रीजिनकुशलसूरि पादुके। कारापिता पोस। दमसी जेराज श्रेयोर्थं .....कुशलसूरिः

गणपति मूर्त्ति पर।

[२५६५]*

(1) ॐ सं1 1337 फा. सु. 2 श्रीमामा मणोरथ मंदिर योगे श्रीदेव
(2) गुप्ताचार्य शिष्येण समस्त गोष्ठि वचनेन पं. पद्मचंद्रेण
(3) अजमेरु दुर्गे गत्वा द्विपंचासत जिन बिंबानि सच्चिकादेविग
(4) (ण)पति सहितानि कारितानि प्रतिष्ठितानि ..... सूरिणा

मंदिर नं. 1

मूलनायक जी पर।

[२५६६]

(1) ।। सं. 1675 मार्गशीर्ष सुदि 12 गुरौ भ1 थाहरू भार्या कनकादे पुत्री वीरां कारितं

(2) ।। श्री आदिनाथ बिंबं । प्र. श्रीवृहत्खरतरगच्छाधीश श्रीजिनराजसूरिभिः।।

स्तंभ पर।

[२५६७]

(1) सं. 1693 मार्गशीर्ष सु (2) दि 9 भणसाली संघवी

(3) थाहरूकेण श्री आ (4) दिनाथ देवगृह स्व ल

(5) घुभार्या सुहागदेवी (6) पुण्यार्थमकारि प्रति

(7) प्रष्ठित श्रीजिनराजि

मंदिर नं. 2

मूलनायकजी पर।

[२५६८]

(1) श्रीलुद्रपुरपत्तने श्रीमत् श्रीवृहत्खरतरगच्छाधीशैः

(2) ।। ओं ।। संवत् 1675 मार्गशीर्ष सुदि 12 गुरौ।। श्रीअजितनाथबिंबं का सं. थाहरू भार्या श्रा.

(3) कनकादे पुत्ररत्न हरराजेन प्र. युगप्रधान श्रीजिनसिंहसूरिपट्टप्रभाकर श्रीजिनराजसूरिभिः।।

स्तंभ पर।

[२५६९]*

(1) सं. 1693 मार्गशीर्ष सुदि (2) 9 भणशाली संघवी थाह

(3) रूकेण श्रीअजितदेव गृ (4) ह पुत्ररत्न हरराज पुण्या

(5) र्थमकारि प्र. श्रीजिन (6) राजसूरिभिः।।

मंदिर नं. 3

मूलनायकजी पर।

[२५७०]

(1) गच्छाधीशैः।।

(2) ।। सं. 1675 मार्गशीर्ष सुदि 12 गुरौ श्रीसंभवनाथ बिंबं का. भ. श्री मल पुत्ररत्न भ. थाहरू भार्या श्रा.

(3) कनकादेव्या प्र. युगप्रधान श्रीजिनसिंहसूरिपट्टप्रभाकर श्रीजिनराजसूरिभिः श्रीवृहत्खरतर

स्तंभ पर।

(1) सं. 1693 मार्गशीर्ष सु (2) दि 9 भणसाली सं.।

(3) थाहरूकेण श्रीसंभ। (4) वनाथ देव गृहं पुत्र

(5) मेघराज पोत्र भोज
(6) राज सुखमल्ल पुण्या
(7) र्थमकारि । प्र. श्री

मंदिर नं. 4
मूलनायकजी पर।

(1) ।। श्रीलोद्रवा नगरे। श्रीवृहत्खरतरगच्छाधीशैः।।
(2) सं. 1675 मार्गशीर्ष सुदि 12 तिथौगुरौ भांडशालिक सा. श्रीमल भा. चांपलदे
(3) पुत्ररत्न थाहरूकेण भार्या कनकादे पुत्र हरराज मेघराजादियुजा श्री चिंतामणि पार्श्वना
(4) थ बिंबं का. प्र. च युगप्रधान श्रीजिनसिंहसूरिपट्टप्रभाकर भ. श्री जिनराजसूरिभिः प्रतिष्ठितं।

स्तंभ पर।
[२५७३]

(1) सं. 1693 मार्गशीर्ष सु
(2) दि 9 भणसाली संघ
(3) वी थाहरूकेण श्रीपा
(4) र्श्वनाथ देवगृहस्य वृ
(5) द्ध भार्या कनकादेवी
(6) पुण्यार्थमकारि प्र.
(7) श्रीजिनराजसूरि
(8) भिः।।

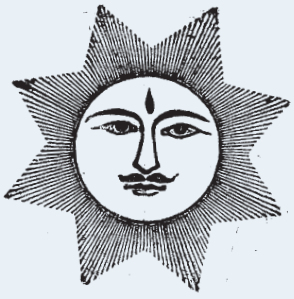

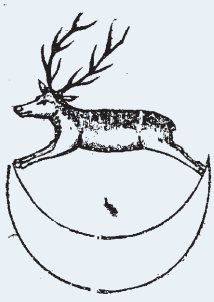

पट्टावली पट्टक।*
श्री महावीर ।। 1

(1) श्रीइंद्रभूति 1
(2) श्री अग्निभूति 2
(3) श्रीवायुभूति 3
(4) श्रीव्यक्त 4
(5) श्रीसुधर्म्मस्वामि 5
(6) श्रीमंडित 6
(7) श्रीमौर्यपुत्र 7
(8) श्रीअकंपित 8
(9) श्रीअचलभ्राता 9
(10) श्री मेतार्य्य 10
(11) श्रीप्रभास 11

श्रीसुधर्म्म स्वामि

(श्री महावीर स्वामी के पाट पर)

श्री जंबू स्वामि (शिष्य - 2)

(श्री सुधर्मा स्वामी के पाट पर) (1) श्रीप्रभव स्वामी (2) श्री शय्यंभव

प्रभव स्वामि

(श्रीजंबू स्वामी के पाट पर)

श्रीशय्यंभव

(श्रीप्रभव स्वामी के पाट पर)

श्रीयशोभद्र शिष्य 2 (1) संभूति विजय शिष्य 12 शिष्यणी 7 (2) भद्रबाहु स्वामी शिष्य चत्वारि 4

संभूति विजय

(यशोभद्रजी के पाट पर)

(1) श्रीनंदिभद्र 1 (2) श्री उपनंद 2 (3) श्रीती सभद्र 3 (4) श्रीयशोभद्र 4

(5) श्रीसुवर्ण्णभद्र 5 (6) श्रीगणिभद्र 6 (7) श्रीपूर्ण्णभद्र 7

(8) श्रीथूलिभद्र 8 नइ शिष्य 2 (9) श्रीरीजुमति 9 (10) श्रीजंबू 10

(11) श्रीदीर्घभद्र 11 (12) श्री पांकुभद्र 12

(शिष्यणी-7)

(1) यक्षा 1 (2) यक्षदन्ना 2 (3) भूता 3 (4) भूतदन्ना 4

(5) सेणा 5 (6) वेणा 6 (7) रेणा 7

(शिष्य - ४)

श्री भद्रबाहु स्वामी

(श्री संभूतिविजय के पाट पर)

(1) श्रीगोदास 1 (2) अग्निदत्त 2 (3) श्रीयज्ञदत्त (4) सोमदत्त

श्रीस्थूलभद्र

(श्रीभद्रबाहुस्वामी के पाट पर)

(शिष्य - 2)

(1) श्रीआर्यमहागिरी 1 नइ शिष्य अष्ठ्हौ 8 (2) श्रीसुहस्तिसूरि 2 नइ शिष्य 12

श्रीआर्यमहागिरी

(श्रीस्थूलभद्र के पाट पर)

(शिष्य-8)

(1) श्रीउत्तर 1 (2) श्रीबलिस्स 2 (3) श्रीधनक्ढ 3 (4) श्रीसिरक्ढ 4

(5) श्रीकोडिण 5 (6) श्रीनाग 6 (7) श्रीनागमित्त 7 (8) श्रीरोहगुप्त 8

श्रीसुहस्तिसूरि

(श्रीआर्यमहागिरि के पाट पर)

(शिष्य-12)

(1) श्रीरोहण 1 (2) श्रीभद्रयस 2 (3) श्री मेहगणी 3 (4) श्रीकामक्ढ 4
(5) श्रीसुस्थित 5 (6) श्रीसुप्रतिबुद्ध 6 (7) श्रीरक्षित 7 (8) श्रीरोहगुप्त 8
(9) श्रीरिषिगुप्त 9 (10) श्रीगुप्त 10 (11) श्रीब्रह्म 11 (12) श्रीसोम 12

श्रीसुस्थित 5

(श्रीसुहस्तिसूरि के पाट पर)

(शिष्य-5)

(1) श्रीइंद्रदिन्न 1 (2) श्रीप्रियग्रंथ 2 (3) श्रीविद्याधर गोपाल 3 (4) श्रीऋषिदत्त 4
(5) श्रीअर्हदत्त 5

श्रीइंद्रदिन्न

(श्रीसुस्थितजी के पाट पर)

श्रीदिन्न शिष्यौ 2

(श्रीइंद्रदिन्न के पाट पर)

(शिष्य-2)

(1) श्री आर्यशांतिसेन 1 नइ शिष्य चत्वारि 4 (2) श्रीसींहगिरी 2 नइ शिष्य 4

श्रीआर्यशांतिसेन **(शिष्य-4)**

(1) श्रीसेन 1 (2) श्रीतावस 2 (3) श्रीकुबेर 3 (4) श्रीरिषिपालित 4

श्रीसिंहगिरी

(श्रीदिन्न के पाट पर)

(शिष्य-4)

(1) श्रीधण्णगिरि 1 (2) श्रीवयरस्वामि 2 नइ शिष्य 3 (3) श्रीसुमित 3
(4) श्रीअर्हदिन्न 4

श्रीवयरस्वामि

(श्रीसिंहगिरी के पाट पर)

(शिष्य-3)

(1) श्रीवयरसेन 1 (2) श्रीपद्म 2 (3) श्रीआर्यरथ 3

श्रीवज्रसेन- (श्रीवयरस्वामी के पाट पर)

श्रीआर्यरथ - (श्रीवयरस्वामी के तीसरे शिष्य)

श्रीपुष्पगिरि - (श्रीआर्यरथ के शिष्य)

श्रीफल्गुमित्त (श्रीपुष्पगिरि के शिष्य)

श्रीधणगिरि- (श्रीफल्गुमित्त के शिष्य)

श्रीआर्यधर्म- (श्रीआर्यहस्ति के शिष्य)
श्रीसिंह- (श्रीार्यधर्म के शिष्य)
श्रीआर्यधर्म*- (श्रीसिंह के शिष्य)
श्रीसंडिल्ल 83- (श्रीआर्यधर्म के शिष्य)

(1) श्रीइंद्ररुतकण्ह 1 (2) श्रीआर्यजंबु 2 (3) श्रीआर्यनंदि 3
(4) श्रीदुष्यगणि 4 (5) श्रीस्थिरगुप्ति क्षमाश्रमण 5 (6) श्रीकुमारधर्म 6

---

* श्री *देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण 7 9.

* किसी 2 पट्टावली में इस नाम के स्थान में 'आर्यपद्म है।

नोट : 'श्रीआर्यधर्म' के शिष्य 'श्रीसंडिल्ल' के नाम के नीचे '83' अंङ्क खुदे हैं। इनके बाद 'श्रीइंद्ररुतकण्ह' को लेकर 'श्रीदेवर्द्धिगणि' तक जो सात नाम हैं इनके नामों के साथ 1-7 यथाक्रम हैं और 'श्रीदेववर्द्धिगणि' के नाम के साथ 60 अंङ्क भी खुदे हुये हैं। श्रीभद्रबाहु स्वामी के शिष्य श्रीसोमदत्त के चरणों के दाहिने तरफ नंद्यावर्त्त के नीचे जो पांच अक्षर खुदे हुए हैं, उनके भावार्थ समझ में नहीं आने के कारण यहां उल्लेख नहीं किया गया।

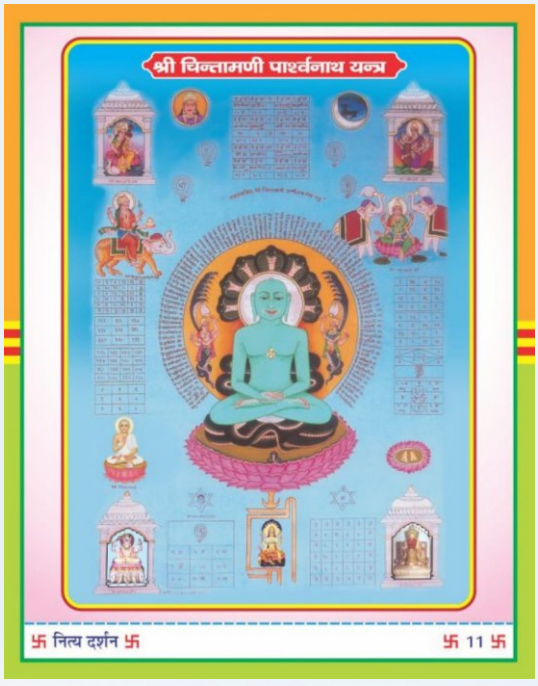

जेसलमेर तीर्थ संबंधित प्रकाशित साहित्य सूचि

क्रम	पुस्तक नाम	लेखक-संपादक	प्रकाशक	भाषा	प्रकाशन वर्ष	पृष्ठ
1	गजनी से जैसलमेर	हरिसिंह भाटी	राजस्थानी ग्रंथागार- जोधपुर	हिन्दी	ई.स. 2014	608
2	जगविख्यात जैसलमेरतीर्थ	मधुसुदन ढॉकी	श्रुतनिधि - अमदावाद	गुज.	वि.सं. 2053	48
3	जेसलमेर तीर्थ परिचय	अज्ञात जैन श्रमण	अमदाबाद जैनवीशा ओसवाल समाज-मुंबई	गुज.	ई.स. 1989	-
4	जेसलमेर पंचतीर्थी अने तेनो इतिहास	-	जेसलमेर लोद्रवपुर पार्श्वनाथ ट्रस्ट	गुज.	ई.स. 1997	116
5	ज्ञानांजलि	मु. पुण्यविजयजी	सागरगच्छ जैन उपाश्रय- बरोडा	गुज.	वि.सं.2025	-
6	जैसलमेरमां चमत्कार	चंदनमल नागोरी	सदगुणप्रसारक मित्र मंडल छोटीसादडी	हिन्दी	वि.सं. 1990	52
7	जैसलमेर	नारायणलाल शर्मा	गोयल ब्रदर्स- उदयपुर	हिन्दी	-	56
8	जैसलमेर का इतिहास	डो. हरिवल्लभ माहेश्वरी	लेखक स्वयं ग्वालियर	हिन्दी	ई.स. 2006	300
9	जैसलमेर का जैन शिल्प	डो. कुंदनलाल जैन	राजस्थान जैन सभा - जयपुर	हिन्दी	ई.स. 1997	300
10	जैसलमेर का विराट संघ	जवाहरलाल जैन	रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला - जयपुर	हिन्दी	ई.स. 1991	80
11	जैसलमेर के महत्त्वपूर्ण ज्ञानभंडार	मु. पुण्यविजयजी	मणिधारी जिनचन्द्र अष्टम शताब्दी समारोह समिति - दिल्ली	हिन्दी	ई. स. 1971	260
12	जैसलमेर जैन गाइड	फुलचंद चोरडिया	लेखक स्वयं - रतलाम	हिन्दी	-	-
13	जैसलमेर पंचतीर्थ इतिहास (अनुवाद)	आ. श्री मनोहरसूरिजी	सीमांत प्रकाशन - उदयपुर	गुज.	ई.स. 1980	52
14	जैसलमेरनी चित्रसमृद्धि	मु. पुण्यविजयजी	साराभाई मणिलाल नवाब	गुज.	इ.स.1951	45

संयोजक: पू. आचार्य श्री पूर्णचन्द्र-युगचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज शिष्याणु

गणि मुक्ति श्रमण विजय

आधार: कोबा - श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर संगृहित डेटा

श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ भगवान का मंदिर, मेवा नगर

यह तीर्थ बालोतरा नगर से 15 किलोमीटर दूर स्थित है। मान्यता यह है कि तीसरी शताब्दी के श्री तीरमसेन व नाकोर सेन द्वारा निर्माण करवाया। यह इस मंदिर में श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा जो गहरे आसमानी रंग की 58 से. मी. ऊँची है। श्री वीरसेन व विरमपुर बसाया जहां श्री चन्द्रप्रभ भगवान का मंदिर बनाया और नाकोर नगर में श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का मंदिर करा प.पू. आर्य श्री स्थूली भद्रस्वामी द्वारा प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई।

तत्पश्चात् श्री सम्पति राजा प्रतिबोधक श्री सुहस्ति सूरि की म.सा. विक्रमादित्य राजा की सभा के द्वारा आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर व भक्ताम्बर चित्रता श्रीमान् तुंग जी म.सा. व कालकाचार्य श्री हरिभद्र सूरि

जी म.सा., श्री देव सूरि जी आदि प्रचण्ड विद्वान आचार्यों ने इस तीर्थ की यात्रा कर राजा श्री राजा श्री सम्प्रति व राजा विक्रमादित्य आदि राजाओं की प्रेरणा देकर समय सभा पर इस मंदिरों का जीर्णाद्धार कराने का उल्लेख है।

नाकोर नगर लगभग 13 वीं शताब्दी तक विद्यमान था। वि.सं. 1280 में जब आलम शाह ने शुद्ध किया। तबरी संघ ने प्रतिमाओं को वहां से 7 किलोमीटर दूर काली गृह ग्राम में सुरक्षा हेतु गर्भ गृह में रख दी। वादि ओर शाह ने मंदिर खाली होने तोड़ डाले और जनता इधर–उधर ग्रामों में जा बसी। वि.सं. 909 में वीरमपुर नगर सुसम्पन्न श्रावकों ने लगभग 270 सदस्यों की संख्या से उज्जवला था उस समय श्रेष्ठी श्री हरकचंद जी प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार कराकर श्री महावीर भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई थी ऐसा उल्लेख है कि वि.सं. 1223 में पूर्ण जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख है वि.सं. 128 में आलम शाह ने इस नगर में चढ़ाई की थी तब इस मंदिर को क्षतिग्रस्त हो गया

वि.सं. 15 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस मंदिर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया गया। कालीद्र में स्थित नाकोर नगर 120 प्रतिमाएं यहां पर लाकर यहां पर श्री पार्श्वनाथ श्री इस प्राचीन को सुंदर मनमोहक, चमत्कारी प्रतिमा को मूलनायक के रूप में नवनिर्मित में वि.सं. 1429 में पुनः प्रतिष्ठा कराई जो वर्तमान में विद्यमान है। मूल प्रतिमा श्री नाकोर नगर में रहने के कारण इस तीर्थ का नाम नाकोड़ा प्रचलित हुआ।

एक और मान्यता है कि यह प्रतिमा सुश्रावक श्री जिनदत्त को श्री अधिष्ठायक देव द्वारा स्वप्न में दिये संकेत के आधार पर नाकोड़ा नगर के निकट सिहंदरी द्वार के पास तालाब से प्रगट हुई थी। जिसका उल्लेख के साथ लाकर वि.सं. 1429 में आ. श्री ..... सूरि जी ने हस्ते प्रतिष्ठा कराई करवाई।

वि.सं. 1511 में जीर्णोद्धार के समय यहां के प्रगटकारी साक्षात्कार अधिष्ठायक देव भैरव जी की स्थापना आचार्य श्री कीर्तिरत्न सूरि जी द्वारा करवाई गई जो इस तीर्थ की रक्षा करते और भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते हैं।

वि.सं. 1564 में ओसवाल वंश के छाजेड़ गौत्र सेठ जुठिल के प्रपौत्र सेठ सदारंग द्वारा जीर्णाद्धार कराने का उल्लेख है।

वि.सं. 1638 में इस मंदिर के पुर्नद्धार होने का उल्लेख है। 17 वीं शताब्दी तक यहां की जहां जो लाली अच्छी रही उसके बाद श्रेष्ठी मालाशाह सकलेचा के ..... नानक जी के यहां के राजकार का अप्रिय व्यवहार देखकर ग्राम छोड़ दिया। अतः जैसलमेर नगर का संघ निकालकार सपरिवार ग्राम को छोड़कर चले गये।

उसके पश्चात् इस ग्राम की जनसंख्या प्रतिदिन घटने लगी। वर्तमान में जैनियों की कोई घर नहीं है लेकिन संघ द्वारा की जा रही व्यवस्था उल्लेखनीय है।

17 वीं शताब्दी के बाद वि.सं. 1865 में जीर्णोद्धार होने का उल्लेख है। उसके पश्चात् भी समय पर आवश्यक जीर्णोद्धार संघ द्वारा हुए।

इस तीर्थ की विशेषता यह है कि इस तीर्थ की प्रतिष्ठा आचार्य श्री स्थूलीभद्र जी स्वामी स्वामी द्वारा प्रतिष्ठा कराने की है।

इस मंदिर के क्षेत्र में निम्न मंदिर विद्यमान है :

1) श्री शांतिनाथ भगवान
2) श्री आदिनाथ भगवान
3) श्री सीमन्धर स्वामी
4) श्री नेमीनाथ भगवान

श्री आदिनाथ भगवान :

अन्य मंदिर श्री पद्मावती देवी व सरस्वती देवी व अन्य गुरू मंदिर की देहरिया है। इसमें यह विशेषता है कि सरस्वती देवी की प्रतिमा पर वि.सं. 1018 का लेख उत्कीर्ण है।

बाहर श्री महावीर भगवान का मंदिर

1) श्री जिनकुशलसूरि जी दादावाड़ी
2) समवसरण का मंदिर
3) काल भैरव का मंदिर

यहां पर सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध है।

जालोर की स्थापना व प्रारम्भिक इतिहास

जालोर जिला (राजस्थान) जोधपुर से लगभग 70 किलोमीटर, उदयपुर से 200 किलोमीटर फालना से 70 किलोमीटर दूर स्थित है जो जोधपुर–बाड़मेर रेल मार्ग पर है। यहां पर चारों ओर से बसों का आवागमन के साधन है व टैक्सी की व्यवस्था है।

जालोर स्वर्णगिरी पर्वतमाला की तलहटी पर बसा हुआ है। इसका प्रारम्भ से इतिहास इस प्रकार है :

जैन साहित्य के अनुसार ऋषभदेव भगवान ने अपने राज्य को दोनों पुत्र को बाँटा जिससे भरत को अयोध्या का राज्य व बाहुबली को गंधार का राज्य सुपुर्द किया। गन्धार की राजधानी तक्षशिला थी जिसका मार्ग मानदेव सूरि के पूर्व व बाद में तक्षशिला रही जिसका मार्ग मरूस्थल की ओर जाया जाता है (साधु संतो का विहार मरू मण्डल से तक्षशिला था) जब तक्षशिला में महामारी का प्रकोप हुआ तब श्री मानदेव सूरि ने नाड़लई से लघुशांति की रचना कर इसी मार्ग से पहुंचाई। इसका हवेनसांग ने लिखा है कि तक्षशिला धर्म चक्र तीर्थ बोध के कब्जे में हो गया है और वे इसे चंद्र प्रभ बोधिस्तक स्तूप रहे थे। ऋग्वेद के अनुसार यहां भरत का ही राज्य था और उनकी सामान्य प्रजा जनास कहलाती थी। भारत में प्राचीनतम नगरों में भीनमाल (मल्लिमिका) एवं विराट के ही नाम आते हैं। भरत ने अष्टापद, शत्रुजा पर कई जैन मंदिर बनाए थे।

जैन धर्म के आदि भगवान व श्री नेमिनाथ की दक्षिण में है और शेष तीर्थंकरों की इनके तीर्थ स्थल के दर्शन के यह ..... रही भगवान महावीर के धर्माचार के लिए सिधुसावरी जाना आगमों में वर्णित है। भगवान महावीर के पश्चिमी भारत की यात्रा के अपने जन्म के 37 वें, 41 वें, 44 वें, 45 वें एवं 50 वें वर्ष में की थी। महावीर के केवल्य ज्ञान की आरासना कुंभरिया (गुजरात) होने सम्बन्धी शोध डॉ. एल. बोहरा प्रभूमि विद्वान कर रहे हैं।

मुनि नथमल जी ने भी अपने स्मरण महावीर ग्रन्थ के 370 पृष्ठ पर भगवान महावीर की यात्रा की पुष्ठि की भ. पार्श्वनाथ गणधर आचार्य के श्री महत्वर भी इसी क्षेत्र में विचरण करते, उनके द्वारा प्रतिष्ठित जीरावला पार्श्वनाथ का प्राचीनतम जिले के सीमा पर है। इसी जीरावला पर्वत श्रृंखला के आगे सुगान्द्रि एवं स्वर्णगिरि की पर्वतमाला है। दीक्षित होने के पश्चात् भगवान महावीर 5 वें वर्ष में अबूर्द मण्डल में चतुर्मास करने के बाद सिन्धु सोवरी देश में गए थे। गर्मी बालू के टीले दूरदराज गांव में जल की कमी ओर लम्बी राह में भूखे प्यासे साधु भगवान के साथ जा रहे थे। रास्ते में तिल से नहीं बोला गाडिया मिला यह दृश्य आज भी जालोर जिला का है।

विमान वत्थु अट्ठ कथा में लिखा है कि सिन्धु सोवरी जाने के लिए व्यवसायियों को अष्ट योजना लम्बे मरूस्थल को पार करना पड़ता है। सटीक योजना, मरूकावतर महामयूरी ग्रंथ में लिखा है जम्बूक यक्ष इन व्यापारियों की रक्षा करता है। इसी यक्ष की स्थापना इसी प्रदेश के मंदिरों में है। वर्तमान के जालोर जिला ईसा पूर्व 6 वीं सदी में विघ सोवरी जनपद का भाव था। सिन्धु नदी के पूर्व का इलाका इसका राजा उदयियन की रानी प्रभावती की दीक्षा के लिए भगवान महावीर उसकी राजधानी वित्तमय पट्टक गए थे। ऐसी चूड़ियों पूर्णिमा वर्णित है।

प्रभावती राजा चेटक कही बहन थी यही वित्तमय पट्टन नष्ट होने के पश्चात आज मोहनजोदड़ा कहलाता है। भगवान महावीर के बाद सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य यह क्षेत्र आर्श कहलाता था, उसकी तरफ से सामन पुष्य गुप्त इस क्षेत्र का शासन करता था तथा इस क्षेत्र का नाम श्रीमाल था, इसके अंतर्गत यक्षमाड़ पर्वत, आबू क्षेत्र एवं गुर गुर्जरात्रा शामिल था। मौर्य के बाद अक्षत्रों ने शासन किया, भीनमाल से सिक्के प्राप्त हुए। रूद्रदामा के जूनागढ़ के जिला लेख में मरूदेश का वर्णन है। शाकक्षत्रपों का झुकाव जैन व बोध धर्म के प्रति था। भीनमाल, श्रीमाल बोध तथा मांडव पुरक्त्र जैन मंदिर समय ही बने थे।

माण्डवपुर का जैन मंदिर उस समय से इस परिमण्डल के शासक भण्डियों के काल में बना था। भीनमाल के बोध मठ की प्रसिद्धि के कारण चीनी यात्री हवेनसाग, हर्षवर्द्धन के समय वैराठ के बोध स्तूपों, मठों एवं विहारों की यात्रा करते हुए भीनमाल के बोध मठ की यात्रा करने आया थातब से जालोर का नामकरण व राजनैतिक इकाई का होना ज्ञात नहीं होता है।

जांबली ऋषि की तपो भूमि स्वर्णलिखी की कन्दराए तो प्राचीन थी। इन कन्दराओं में जलन्धरनाथ आदि महात्माओं के स्थान थे। अंत में भीनमाल श्रीमाल का पतन होने के बाद गुर्जर राजधानी की स्थापना कर इस नगर का नाम जाल्हुर रखा। मध्यकाल के नाथ सम्प्रदाय का केन्द्र स्थल होने के कारण इसका नाम जालन्धरनाथ के पवित्र धाम के कारण जालन्धरपुर, जालंधर हो गया है। पद्मनाभ द्वारा रचित कान्हड़दे प्रबन्ध में इसी नगर का नाम जालहूर लिखा है।

सको के पश्चात् यह क्षेत्र गुप्तों के अधीन हो गया, गुप्तकाली, इष्टिका प्रासाद इस इलाके में था जो अब स्वस्थ हो गया अर्थात् इसी समय जालोर का राज्य एवं राजधानी अस्तित्व में आ गये थे, क्योंकि कुवलथमाला की रचना जालोर के आदिनाथ भगवान के मंदिर में हुई थी।

तोरमाड़ का पुत्र मीहिरकुल सेव था। उसने इस क्षेत्र के बोधमठों को ध्वस्त कर दिया था। हवेनसांड लिखता है कि मीहीरकुल ने भीनमाल क्षेत्र में 16 स्तूपों एवं विहारों को नष्ट किया था। तब से इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म विलोपित हो गया। हुणों के पश्चात् इस प्रदेश पर गुर्जरों का शासन स्थापित हो गया। एक इस प्रदेश का नूतन गुर्जरयात्रा हो गया।

भीनमाल के गुर्जर राजा 628 ई. के आसपास काल खण्ड में चावंडों (चापो) ने नीत जीत लिया था।

इसकी पुष्ठि बसन्तगढ़ के 625 ई. के शिलालेख से होती है।

उसके अनुसार 625 ई. में वर्मला का शासन राजभील था जो ब्रजभट्ट सताशय का पुत्र था उसने आकर उसके आसपास के क्षेत्र पर राज्य किया। महाकवि माद्य के दादा सुप्रभदेव वर्सलात के सर्वाधिकारी (प्रधानमंत्री) थे। इसी सभा तक जालोर का राज्य अस्तित्व में नहीं आया था तभी भीनमाल के ज्योतिषाचार्य ब्रह्मगुप्त ने अपने अपने ब्रह्मस्पुष्ट, सिद्धार्थ नाम ग्रंथ में 628 ई. में उस समय के शासक चाप पशीय चावड़ा राजा। व्याघमुख वर्गलात का नाम बताया है। ई. 676 ई. रचित निथिक मुर्ति के अनुसार वर्मलात के चाँदी सिक्के उस समय प्रचलित थे। 739 इ. में भीनमाल श्रीमाल राजा चालगो, प्रतिहारों के हस्तगत कर लिया। 760 ई. के आसपास प्रतिहार नाम भट्ट ने तत्कालीन सामन्तों का पराजित प्रतिहार साम्राज्य की नींव डाली।

येरूव वैदिक मंदिर के समय की वरादृश्याम की प्रतिमा भीनमाल में आज भी पूजित है। गुप्तों के पश्चात् हुणों ने श्रीमान प्रदेश पर शासन किया। श्वेत हुणों के विषय में इतिहासकारों का मत है कि स्वेतहवे, तोड़मोड़ वि. की छठी शताब्दी में मरूस्थल की तरफ आया उस भीनमाल क्षेत्र को जीतकर राजधानी स्थापित की। जैनाचार्य हरिभद्र सूरि ने जैन धर्म का अनुयायी बनाया था। इसी तोरमाड़ से भगवान ऋषभदेव का विशाल मंदिर भीनमाल में बनवाया था। कुवलाय माला 778 ई. उद्योतसूरि ने लिखा है कि इसका राजा तोरमाड़ समस्त क्षेत्र का स्वामी था। एक जैन धर्म में आस्था रखता था।

प्रतिहारि ने अपनी राजधानी सुरक्षा की दृष्टि से स्वर्णगिरि के गोद में बसे जानकी आश्रम में स्थापित

प्रतिहार अपने आपको रघवशीय लक्ष्मण के वंशज मानते है। क्योंकि लक्ष्मण ने अपनी राम की सेवा उनकी प्रतिहारी बनकर की ।

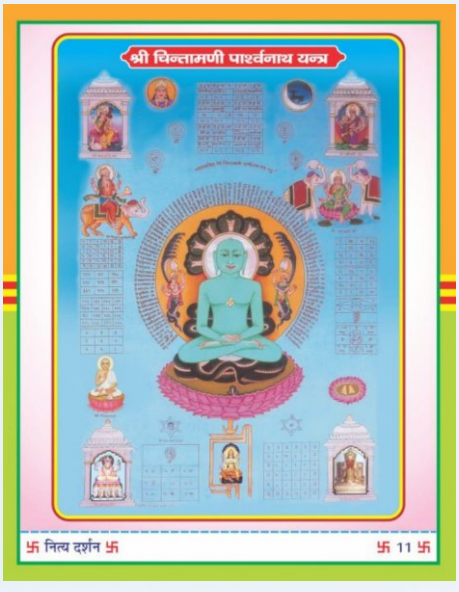

जालोर : स्वर्णगिरि के मंदिरों का इतिहास

जालोर स्वणगिरि के तलहटी में बसा है। जालोर दुर्ग में स्थित है। यह तीर्थ प्राचीनकाल कनकांचन नाम से प्रसिद्ध था। पूर्व में कई करोड़पति श्रावक रहते थे। पूर्व में राजाओं ने यक्ष वसादि अष्टापद आदि तीर्थों का निर्माण कराया था। उल्लेखानुसार वि.सं. 126–135 के बीच राजा विक्रमादित्य के वंशज श्री नाहड़ राजा द्वारा निर्माण होना प्रतीत होता है। श्री मेरू तुंग सूरि द्वारा रचित ..... में लगभग 13 वीं शताब्दी में श्री महेन्द्रसूरि जी म.सा. के द्वारा रचित अष्टतोपदी तीर्थमाला में भी इसका उललेख है। संकलनर्हत् स्त्रोत में भी इसका कनक कालन का उल्लेख है, कुमारदात राजा द्वारा वि.सं. 1221 मं यक्ष वसति मंदिर का उद्धार करने का उल्लेख है। स्वर्णगिरि में कुमारपाल राजा द्वारा निर्मित श्री पार्श्वनाथ भगवान के मंदिर कुमार विहार की प्रतिष्ठा वि.सं. 1221 में श्री आचार्य श्री वादी देव सूरि जी म.सा. सुहस्व का उल्लेख है।

वि.सं. 1256 में पूर्णचंद्र सूरि जी म.सा. के द्वारा मंदिर में तोरण की प्रतिष्ठा हुई, वि.सं. 1265 में मूल शिखर पर स्वर्ण दण्ड, वि.सं. 1268 में संस्कृत में दातरी शिक्षा के रचियता श्री रामचन्द्र सूरिजी म.सा. द्वारा पेक्षा मध्य मण्डप पर स्वर्ण मय कलश की प्रतिष्ठा करवाने का उल्लेख है। वि.सं. 1681 में स्वर्ण में सम्राट अकबर के पुत्र जहांगीर के समय में महाराज गजसिंह जी व अन्य सिपहसलार का उल्लेख है। मंत्री मुहणोत जयसिंह जी द्वारा अनेकों प्रतिमाएं प्रतिष्ठित कराने का उल्लेख है जिनमें से कई प्रतिमाएं विद्यमान है।

श्री महावीर भगवान के मंदिर का जीर्णोद्धार मंत्री श्री जयमल जी द्वारा करवाकर श्री जयसागर जी महाराज के हस्ते प्रतिष्ठा करने का उल्लेख है, कहा जाता है कि यक्ष व सति मंदिर है जिसका कुमारपाल

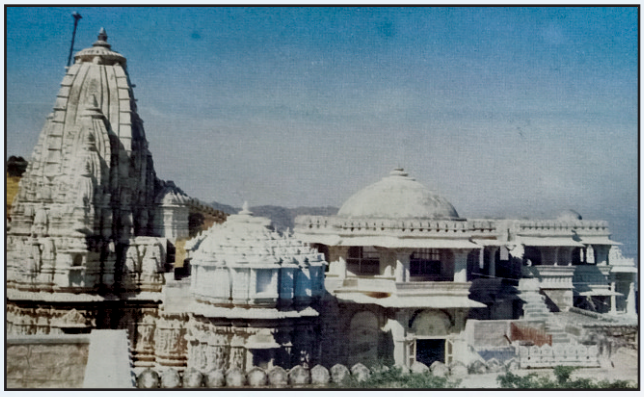

राजेन्द्र द्वार - बड़े मन्दिर महावीर स्वामीजी मन्दिरजी के बाहर का दृश्य

यक्षवसति के मूलनायक

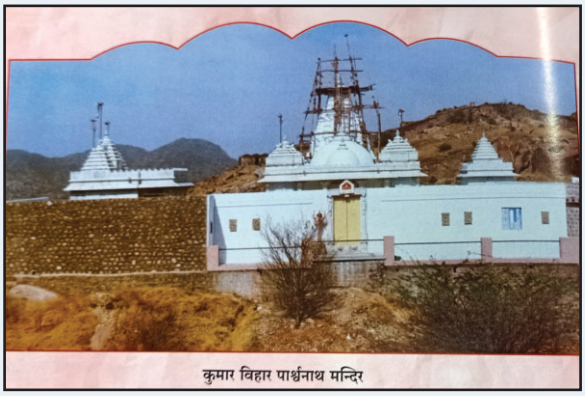
कुमार विहार पार्श्वनाथ मन्दिर

राजा ने पूर्व में उद्धार कराया था। अन्तिम उद्धार मा. श्री राजेन्द्रसूरि जी के उपदेश से सम्पन्न हुआ। स्वर्णगिरि के तलहटी में जाबलीपुर (जालोर) वि.सं. 835 में आचार्य उद्योतन सूरी जी ने जाबलीपुर में श्री आदिनाथ में कुवल माला व रथ की रचना की, ऐसा उल्लेख है। उस समय अनेक मंदिर थे। लेख उसके अष्टापद तीर्थ था।

आबू के लावण्य वसही मंदिर में वि.सं. 1296 में शिलालेख में भी है। वि.सं. 1293 में राजा श्री उदयसिंह जी के मंत्री दानवीर श्री दानवीर शिल्पकला विद्या में विद्यमान थे। श्री यशोवीर द्वारा श्री आदिनाथ भगवान के मंदिर में अद्‌भूत कलायुक्त मण्डप निर्मित कराने का उल्लेख है। खरतरगच्छ गुणविली के अनुसार राजा श्री उदयसिंह के समय वि.सं. 1310 का वैशाख शुक्ला 13 शनिवार स्वातिनम यक्षत्र में भी महावीर भगवान के मंदिर में 24 जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा उत्सव व अनेकों राजाओं व प्रधान पुरूषों की उपस्थिति में महामंत्री री जयसिंह जी के तत्वाधान में समारोह सम्पन्न हुआ था उस समय पालनपुर वागड़देश आदि था। श्री श्रावकगण एकत्रित हुए थे। वि.सं. 13वीं में सामन्व सिंह के सानिध्य में अनेकों जिन प्रतिमाएं प्रतिष्ठा करने का उल्लेख है। वि.सं. 1371 ज्येष्ठ कृष्णा 10 के दिन आचार्य श्री जिन चंद्र सूरि जी विद्यमान में दीक्षा व माला रोपण होने का उल्लेख है।

इसके बाद अल्लाद्दीन खिलजी द्वारा यहां के मंदिर को क्षति पहुंची व कलापूर्ण अवशेष आदि मस्जिदों में परिवर्तित किए गए जिनके आज भी नमूने दिखाई देते है। कुछ पर प्राचीन जिन शिलालेख उत्कीर्ण है वि. सं. 1651 में यहां मंदिरों के होने का उल्लेख है। आज यहां पर कुल 12 मंदिर है। विक्रम की दूसरी शताब्दी के 18वीं शताब्दी तक यहां के जैन राजाओं, मंत्रियों व श्रेष्ठियों द्वारा किए गए समाजिक कार्य उल्लेख है बिना वर्णन सम्भव नहीं है।

यहां के राजा उदयसिंह के मंत्री यशोवीर ने वि.सं. 1287 में मंत्रीश्वर श्री वस्तुपाल तेजपाल द्वारा शोमनसूत्र धारों से निर्मित आबू के लावण्यवशीय वसीह द्वारा प्रतिष्ठा महोत्सव में भाग लिया था।

उस समय अन्य 84 राजा अनेको मंत्री व प्रमुख सदस्य उपस्थित थे। यशोवरी शिल्पकाल निष्णाद

विद्वान होने के कारण अद्‌भूत बताई। जिस पर उनकी विद्वता और अन्य गुणों की प्रशंसा हुई थी, वि.सं. 1741 में यहां के मंत्री मुणहोत जयमल जी के पुत्र जेठली के जोधपुर के माहराजा श्री यशवंत सिंह जी के दीवान थे, जिन्होंने अपनी दीवान गिरि की कुशलता दिखाई थी जिस पर नेवली की ख्यात की रचना हुई थी जो आज भी जनता में प्रचलित है। इस तीर्थ के तीर्थोद्धारक प. पू. श्री राजेन्द्रसूरि जी म.सा. की यह साधना मूर्ति है।

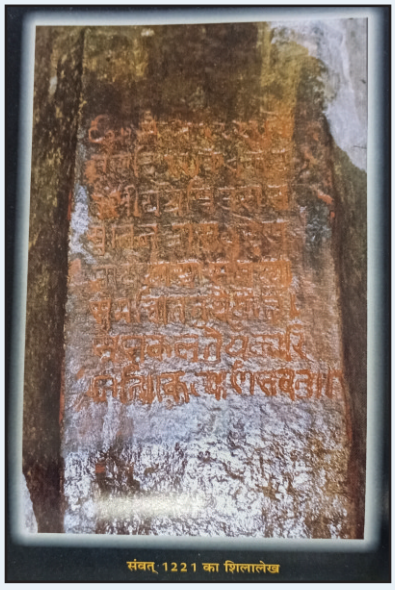
संवत् 1221 का शिलालेख

अन्य मंदिर :

स्वर्णगिरि पर्वत के किले में 4 मंदिर एक गुरू मंदिर व इसकी तलहटी में 8 मंदिर अभी विद्यमान है। किले पर चौमुखी मंदिर व पार्श्वनाथ आदि प्रसिद्ध है जिन्हें अष्टापद मंदिर व कुम्हार विहार मंदिर भी कहते हैं। जालोर में श्री नेमिनाथ भगवान के मन्दिर में वि.सं. 1656 में प्रतिष्ठा आचार्य श्री हीरसूरिजी म.सा. की गुरू मूर्ति हैं । नव निर्मित नन्दीश्वर द्वीप अतिसुंदर बना हुआ है।

कला सौंदर्य :

समुद्र की सतह से लगभग 1200 फीट पर्वत पर 2102 किलोमीटर लम्बे–चौड़े प्राचीन किले के परकोटे में मंदिर का दृश्य अति सुहावना लगता है। जो कि पूर्व सदियों की याद दिलाता है। यहां मंदिर व मस्जिदों में अनेकों प्रतिमाएं व कलात्मक अवेश वर्तमान में भी दिखाई देता है।

स्वर्णगिरी पर निम्न मंदिर स्थापित है :

(1) पार्श्वनाथ मन्दिर : इस मंदिर का निर्माण वि.सं. 1221 में महाराजा कुमार पाल द्वारा निर्माण कराया गया। इसके बाद मुगलकालीन आक्रमणों से भग्नावेश की अवस्था में आ गया। शिलालेख से यह प्रतीत होता है कि यह मंदिर महावीर स्वामी का था। यह मंदिर वि.सं. 1194 से पूर्व का बना हुआ है। इस मंदिर की प्रतिष्ठा श्री देवसुरिश्वर जी द्वारा करवायी गई थी, इसके पश्चात पुनः जीर्णोद्धार यशोवीर भण्डारी ने करवाया । इसके पश्चात्

जालोर का तोपखाना जहाँ से शिलालेख प्राप्त हुये

तोपखाना का भीतरी दृश्य

संवत आचार्य श्री पूर्णचन्द सूरिजी ने, 1268 में स्वर्ण कलश व ध्वजा दण्ड की प्रतिष्ठा रामचन्द्र सूरि जी ने करवायी। शिलालेखों से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व में फण वाले पार्श्वनाथ भगवान बिराजे होंगे। भवन की भव्यता स्पष्ट होती है। यहां एक देवी मूर्ति स्थापित है जिस पर वि.सं. 1175 वैशाख वदि पंचमी का लेख उत्कीर्ण है।

(2) यहां पर विभिन्न देवियां, चामुण्डा देवी, आशापुरा आदि देवी मूर्तियां स्थापित है। इसके अतिरिक्त इस्लाम धर्म से सम्बन्धित एक बड़ी मस्जिद बनी हुई है जिसका अवलोकल करने से यह स्पष्ट है कि जो स्तम्भ बने हुए हैं वे किसी मंदिर के हैं। इससे स्पष्ट है कि विभिन्न आक्रमण के समय मंदिर के स्तम्भ वहां लगाए गए। स्वर्णगिरी के मंदिरों की देखरेख के लिए अलग से पेढ़ी नगर के मध्य स्थित है।

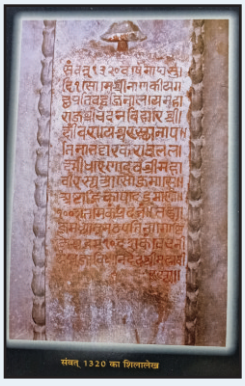
संवत् 1320 का शिलालेख

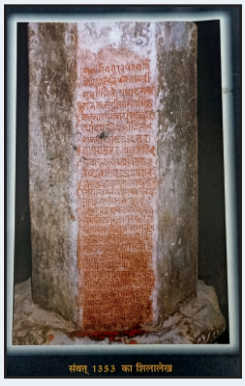
संवत् 1353 का शिलालेख

संवत् 1323 का शिलालेख

सिरोही : जालोर जिले की सीमा के पास जालोर जिले के ग्राम बड़ालोटी वाला के मेघवालों की गली में नल खुदाई का काम हो रहा था, तब भीतर एक बड़ा पत्थर दिखाई दिया तो उनके पत्थर समझकर उसको बाहर निकाल कर रख दिया। यह मूर्ति मिट्टी से भरी हुई थी । आगामी दिन वर्षा होने से मिट्टी पानी से निकल गई तब मूर्ति के आकार दिखाई दिया। उसको धोया गया तो जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर भगवान की प्रतिमा थी, जिस पर वि.सं. 1355 का लेख उत्कीर्ण है। जैन साहित्य के अनुसार इस मार्ग से महावीर भगवान विहार करते हुए गुजरे हैं।

श्री गिरिराज (विमल गिरी) शत्रुंजय तीर्थ महिमा

इस तीर्थ की पृष्ठ भूमि व महिमा कई साधु भगवन्तों व विद्वानों ने रचना की तथा लेखक ने इसका संक्षेप इतिहास पूर्व पुस्तक में प्रकाशित किया है। वर्तमान में संक्षेप में यह जानकारी लिखने का प्रयास कर रहा हुँ। इस गिरि को कई नामों से पुकारते है जैसे सिद्धगिरि, ध्यान गिरि, सुपार्श्व गिरि, पुण्डरिक गिरि, सिद्धगिरि, विमल गिरि।

यह शाश्वत तीर्थ कहलाता है, वैसे भारत में अनेक तीर्थ स्थापित है लेकिन कुछ तीर्थ ऐसे है जो किसी विशेष रूप से प्रसिद्ध है जैसे :

(1) कोरनी : माण्डनी (रचना) श्री रणकपुर तीर्थ
(2) ऊँचाई : श्री तारंगा तीर्थ
(3) कला (नक्काशी) : श्री आबू पर्वत तीर्थ
(4) महिमा : श्री गिरिराज शत्रुंजय तीर्थ

महिमा की दृष्टि से आश्चर्यचकित बिन्दु निम्न है :

यहां पर महाविदेह क्षेत्र के श्री सीमन्धर स्वामी का तीर्थ भी विद्यमान है जिसकी महिमा भी ज्वलन्त उदाहरण है। इसकी कई विशेषता है। पूर्व में यह तीर्थ था जिसके लिए यह शाश्वत तीर्थ कहलाता है। इस तीर्थ में ऋषभदेव भगवान ने भी 99 पूर्व बार परिक्रमा की थी (1 पूर्व बारा 70561 भरत वर्ष)। यहां पर अनेक आत्मा सिद्ध हुई है। यहां आसोज शुदि 15 को पाण्डवों का 20 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष हुआ।

चैत्र पूर्णिमा पर ऋषभदेव भगवान के प्रथम गणधर पुण्डरिक स्वामी 5 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष सिधारे, कार्तिक पूर्णिमा के दिन द्राविड़, वारिविल्व 10 करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष सिधारे, फाल्गुन सुदि 10 को नभि विनभि 2 करोड़ मुनियों के साथ, फाल्गुन सुदि 13 को कृष्ण के सुपुत्र शाम्ब, प्रद्यम्न ने 8.5 करोड़ मुनियों के साथ व श्री कदम्ब मुनि (गणधर) 1 करोड़ मुनियों के साथ, नारद मुनि 91 लाख मुनियों तथा श्री अजितनाथ भगवान के 10 हजार मुनियों तथा थावच्चोपुत्र श्री गणधर केशी मुनि, मुनियों आदि इस भूमि पर मोक्ष सिधारे, मनुष्य धर्म एवं धर्म स्थलों जैसे ऊंटी, मैसूर, आबू, दार्जिलिंग आदि पर्वतीय स्टेशनों पर भ्रमण के लिए जाते हैं लेकिन इस पहाड़ी स्थल पर आने से अनेक पाप कट जाते है। रमणीय स्थलों पर भ्रमण पर जाने से भावनात्मक दृष्टि से कर्म बन्ध होते है जबकि इस पवित्र स्थल पर आने से कर्म बन्ध छूटते है और मुक्ति की ओर अग्रसर होते हैं।

नो टुक तीर्थ में क्या–क्या है ? जिसका अवलोकन दर्शन व पूजन करना चाहिए।

(1) श्री ऋषभदेव भगवान (मूलनायक) श्वेत पाषाण की आकर्षक प्रतिमा है जिसका दर्शन–पूजन कर धन्य हो जाते हैं। इसकी प्रतिमा मेवाड़ के सपूत श्री कर्माशाह दोशी द्वारा वि.सं. 1587 ज्येष्ठ वदि 6 को श्री विद्यामण्डन सूरि जी म.सा. के शिष्य विवेक मण्डन जी की निश्रा में प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी। इस तीर्थ में इस जिनालय के साथ छोटे–बड़े जिनालय भी स्थापित है इस मंदिर की ऊंचाई 52 हाथ (79) है। इस तीर्थ के पूर्व सोलह उद्धारक हुए है। उसमें अन्तिम उद्धारक श्री कर्माशाह दोशी (मेवाड़) थे जिन्होंने आचार्य श्री से प्रतिष्ठा कराने का आग्रह किया। इनके वंशज वर्तमान में उदयपुर–चित्तौड़गढ़ में निवासरत है।

उद्धारक श्री कर्माशाह मूल रूप से चित्तौड़ के निवासी थे और इनका परिवार उज्जैन से आया था, इसके लिए कहा जाता है कि मैं मूलरूप से परमारवंश विक्रमादित्य प्रथम के वंशज थे। इनका देहावसान उदयपुर मेवाड़ में हुआ। ये मेवाड़ की आन–बान–शान थे।

इसमें 1245 कुंभ, 21 सिंह व 72 स्तम्भ है। इस तीर्थ पर छोटे–बड़े 2507 जिनालय है और 27007 प्रतिमाएं तथा लगभग 12000 चरण–पादुकाएं स्थापित है। जिनमें से नव दूक में 124 जिनालय, 739 देहरिया, 11474 प्रतिमाएं व 8961 चरण पादुकाएं है। इस तीर्थ की ऊँचाई 2000 फीट है और यह तीर्थ लगभग 11 किलोमीटर लम्बा व 3.5 किलोमीटर चौड़ाई के क्षेत्रफल में फैला हुआ है। तीर्थ पर जाने के लिए 3364 सीढ़ियां है।

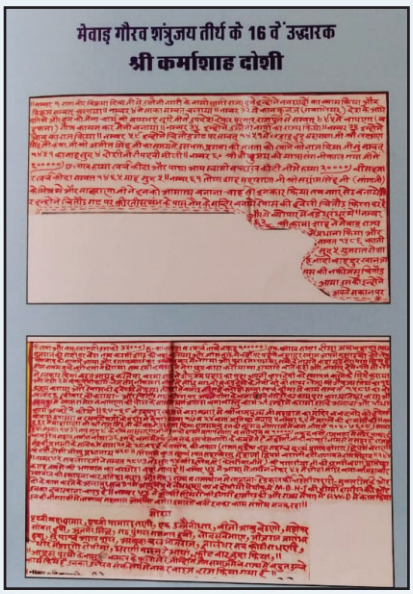

इसकी यात्रा बिना खाए–पीए (उपवास) करनी चाहिए, उपर रायण वृक्ष जहां पर तीन प्रदक्षिणा अवश्य देनी चाहिए व तीर्थ की भी तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिए। काउसग्ग मुद्रा में चैत्यवंदन कर यात्रा करनी चाहिए। क्योंकि इस तीर्थ में यात्रा करने से अपने कर्मों का नाश, आत्मा को पवित्र को भव्य बना, मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो।

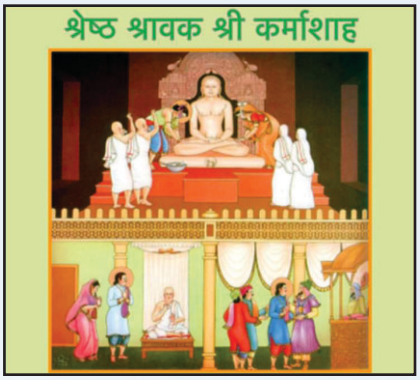

नोट :

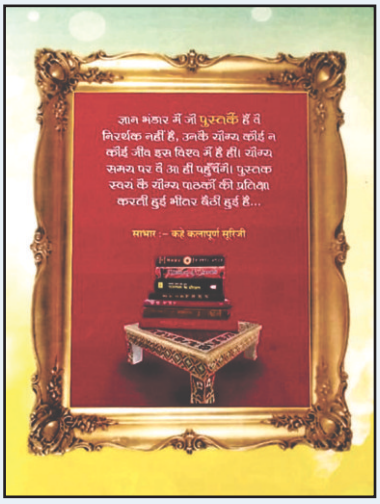

एक पूर्व, पल्योपम की धारणा को स्पष्ट नहीं होता। इसको समझने के लिए यह लिखना स्पष्ट होता है कि उस प्राचीनतम समय परिमाप, गणित विद्या व गणना की विधि क्या रही होगी, इसका ज्ञान नहीं है, इसलिए यह सम्भव है कि केवल इसी को भूत, वर्तमान, भविष्य का पता होने के कारण ही आगम को पढ़ने पर प्रतिबन्ध था और यहां तक साध्वी भगवंतों के लिए भी प्रतिबन्ध था। मनुष्य की अल्प बुद्धि से इस गणित को नहीं समझा जा सकता।

यह सत्य है कि प्राचीनकाल में प्रत्येक प्राणी मात्र की उम्र, ऊँचाई या लम्बाई जिसका जैसा आकार है, वह अधिक था, यह प्रमाणित पूर्व पुस्तकों में किया गया है। आगम जो भगवान की वाणी है, वह प्रमाणिक है। उसका श्रवण कर सम्यक दर्शन प्राप्ति करना चाहिए और सम्यक दर्शन को प्राप्त कर सम्यक ज्ञान सम्यक तप के मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त करता है।

करोड़ों मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया जिसको सुनकर (पढ़कर) पाठकगण आश्चर्यचकित हो रहे होंगे लेकिन यह सत्य है कि भगवान की वाणी गलत नहीं होती, विश्वसनीय होती है (2) 2200 वर्ष पूर्व जैनों की जनसंख्या 40 करोड़ थी तो यह सोचे कि सब जातियों की संख्या कितनी होगी। केवल 100 वर्ष की गणना के संदर्भ की ओर भी सोचे की जब 1918–20 में हुए स्पेनिस फ्लू की महामारी में भारत में ही केवल 1 करोड़ 30 लाख मरे जिसका वर्णन श्री सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" ने अपनी आत्म कथा "कुली भाट" पुस्तक में लिखा है, इसी प्रकार जान बेदी ने अपनी पुस्तक "Great Influences" में लिखा है कि इस समय महात्मा गांधी भी इस बीमारी के शिकार हुए थे और उनकी पुत्रवधु श्रीमती गुलाबदेवी व उनके प्रपौत्र शांति भी इस बीमारी मे मारे गए थे। यदि महात्मा गांधी भी मारे जाते तो भारत का इतिहास और तरीके से होता।

इस महामारी का प्रारम्भ सर्वप्रथम 29 मई 1918 को जब प्रथम विश्वयुद्ध से लौटकर आए सिपाहीगण मुम्बई बंदरगाह पर आकर रूके तब उसमें से 5 सिपाही जो संक्रमित थे, उनका स्वास्थ्य खराब हुआ तो ठीक होने के बाद ले जाया गया तब बीमारी का पतन हुआ। इतिहासकार अजितकपूर अपनी पुस्तक में लिखते है व जान बेरी लिखते है कि इन 24 सप्ताह में जितने लोग मरे थे उतने पिछले 124 वर्षों में कभी नहीं मरे थे केवल दक्षिणी अफ्रीका की बात करे कि वहां की आबादी 10.5 करोड़ मे से 6.5 करोड़ लोग इस बीमारी के शिकार हो गए। अनुमान यह लगाया जाता है कि इस महामारी में 10–20 करोड़ लोग शिकार होकर मारे गए थे। इसकी कल्पना कीजिए कि मरने वाले की संख्या 10–20 करोड़ की थी तो प्राचीनकाल में भी कितनी बड़ी जनसंख्या रही होगी।

शंत्रुजय पहाड़ी पर देव लोक जैसा आभास : श्री पालीताणा तीर्थ

जैन साहित्य के अनुसार यह तीर्थ अति प्राचीन व शास्वत है। यहां पर पूर्व चौबीसी कदम मुनि व अन्य कई साधु–साध्वी भगवन मोक्ष गए, इसलिए यहां भगवान श्री आदिनाथ ने 99000 बार यात्रा कर भव सफल बनाया।

गुजरात के भावनगर जिले में स्थित पालीताना कस्बा जैन धर्मावलम्बियों की आस्था का प्रमुख केन्द्र है। जिले के दक्षिण–पश्चिम में स्थित पालीताना अपनी पहाड़ियों और नदी तलहटी के साथ–साथ धार्मिक आस्था और मान्यताओं के लिए विश्व भर में जाना जाता है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि पालीताना दुनिया का ऐसा पहला शहर है जिसे कानूनी रुप से शाकाहारी शहर होने का दर्जा प्राप्त है। जैन मंदिरों के लिए प्रसिद्ध पालीताना के पास शत्रुंजय पहाड़ी पर स्थित है, जिसकी तलहटी से होकर शत्रुंजय नदी बहती है।

शत्रुंजय पहाड़ी के शिखर पर सदियों से 863 जैन मंदिरों की भव्यता के साथ होना, इसे ऐतिहासिक होने के साथ दुनियां के नक्शे पर एक विशिष्ट स्थान दिलाता है । इस जगह पर आने वाले सैलानियों के मन में सबसे पहला सवाल यह आता है कि इन मंदिरों को कब और किसने बनाया। वैज्ञानिकों, साक्ष्यों और संदर्भो से पता चलता है कि इन मंदिरों का निर्माण 900 साल पहले करवाया गया था। जैन शास्त्रों के अनुसार यह शास्वत तीर्थ है। इस तीर्थ का कई बार जिर्णोद्धार हुआ । जैन धर्म के पहले तीर्थकर ने शिखर पर स्थित वृक्ष के नीचे कठिन तपस्या की थी। पालीताना के निकट पांच पहाड़ियों में सबसे अधिक पवित्र पहाड़ी है शत्रुंजय ।

जैन ग्रंथ 'विविध तीर्थकल्प' में शत्रुंजय के निम्न नाम दिए गए है – सिद्धिक्षेत्र, तीर्थराज, मरुदेव, भगीरथ, विमलाद्रि, महस्त्रपत्र, सहस्त्रकाल, तालभज, कदम्ब, शतपत्र, नगाधिराजध, अष्टोत्तरशतकूट, सहस्त्रपत्र, धणिक, लौहित्य, कपर्दिनिवास, सिद्धिशेखर, मुक्तिनिलय, सिद्धिपर्वत, पुंडरिक। शत्रुंजय के पांच शिखर बताए गए है। माना जाता है कि जैन धर्म के 24 तीर्थकरों में से 23 तीर्थकर इस पर्वत पर आए थे। प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव का विहार इस स्थान पर 99 बार हुआ। इस भूमि का एक–एक कण उनके चरण स्पर्श से पावन हुआ है।

इन मंदिरों की नक्काशी व मूर्तिकला विश्वभर में प्रसिद्ध है । ये मंदिर काफी खूबसूरत है और एक अद्भुत छठा प्रकट करते हैं। पालीताना शत्रुंजय तीर्थ का जैन धर्म में बहुत महत्व है। जैन धर्म के अनुसार प्राचीनकाल से ही पालीताना जैन साधुओं और मोक्ष एवं निर्वाण का प्रमुख स्थल रहा है। मंदिरों को देखने से संजीदगी का अहसास होता है, इनकी कारीगरी सजीव–सी लगती है।

जैन धर्म के प्रथम तीर्थकर भगवान ऋषभदेव का मंदिर पालीताना का प्रमुख स सबसे खूबसूरत मंदिर है। चौमुखा मंदिर क्षेत्र का सबसे बड़ा मंदिर है। कुमारपाल, मिलशाह, सम्प्रति राज मंदिर पालीताना के प्रमुख मंदिर है। पालीताना में बहुमूल्य प्रतिमाओं आदि का भी अच्छा संग्रह है। यदि आपकी यात्रा का उद्देश्य मानसिक शांति ही है तो फिर पालीताना एक ऐसी जगह है।

इस जगह पर आकर 'शत्रुंजय पहाड़ी' की यात्रा कर सकते हैं। ये अध्यात्म और शांति के लिए दुनियाभर में प्रसिद्ध है। इस जगह पर पहुंचकर आपको अवश्य ही सुखद अनुभूति होगी। पालीताना मंदिरों के शिखर पर जब सूर्य का प्रकाश पड़ता है तो इसकी अनुपम छठा का दृश्य बहुत आकर्षक लगता है। पहाड़ पर पहुंचते ही लगता है जैसे किसी देव लोक में पहुंच गए हों। वहां एक साथ सैकड़ों मंदिर देखकर व्यक्ति सभी चिंताओं को भुलाकर भक्ति भाव में लीन हो जाता है।

पालीताणा तीर्थ एक शाश्वत तीर्थ कहलाता है, जहां पर पूर्व चौबीसी के होने का प्रमाण भी मिलते हैं। इसी कारण से श्री ऋषभदेव भगवान ने अपने जीवनकाल में इस तीर्थ की 99 हजार बार परिक्रमा की थी। ऋषभदेव भगवान को अपने छंदमस्थ अवस्था में 400 दिन तक निरहार के रूप में रहना पड़ा था क्योंकि उन्हें सचित गोचरी उपलब्ध नहीं हुई।

ऐसे समय में श्रेयांस कुमार को ज्ञान हो गया था कि भगवान को संचित गोचरी प्राप्त नहीं हो रही है। उसी समय वहां 108 घड़े इक्षु रस के आए। उस समय श्रेयांस कुमार ने उनको ईक्षु रस से पारणा कराया। वह दिन अक्षय तृतीया का दिन था। उसके बाद उनकी याद में वर्षीतप का प्रचलन हुआ और ऐसी मान्यता है कि श्रावकगण, साधु–साध्वी जी 400 दिन का तप करते हैं और पूर्ण होने पर अक्षय तृतीया को ही इक्षु रस प्रारम्भ करते हैं। इस तपस्या को वर्षीतप कहा जाता है।

पारणा का स्थान हस्तिनापुर था लेकिन शाश्वत तीर्थ पालीताणा है। इस तीर्थ का अपना महत्व है। इसलिए सर्वाधिक पारणा पालीताणा में ही होते थे और वर्तमान में भी होते हैं। दूसरा हस्तिनापुर में करने को मान्यता दी जाती है। वर्तमान में हर तीर्थस्थल पर व सुविधा के अनुसार अपने निकटतम स्थान पर अक्षय तृतीया के पारणे होते हैं।

तपस्वी अमर रहे

तपस्वी की जय जयकार

नव पद ओली आराधना

श्री आदिनाथ सिद्धचक्र यंत्र

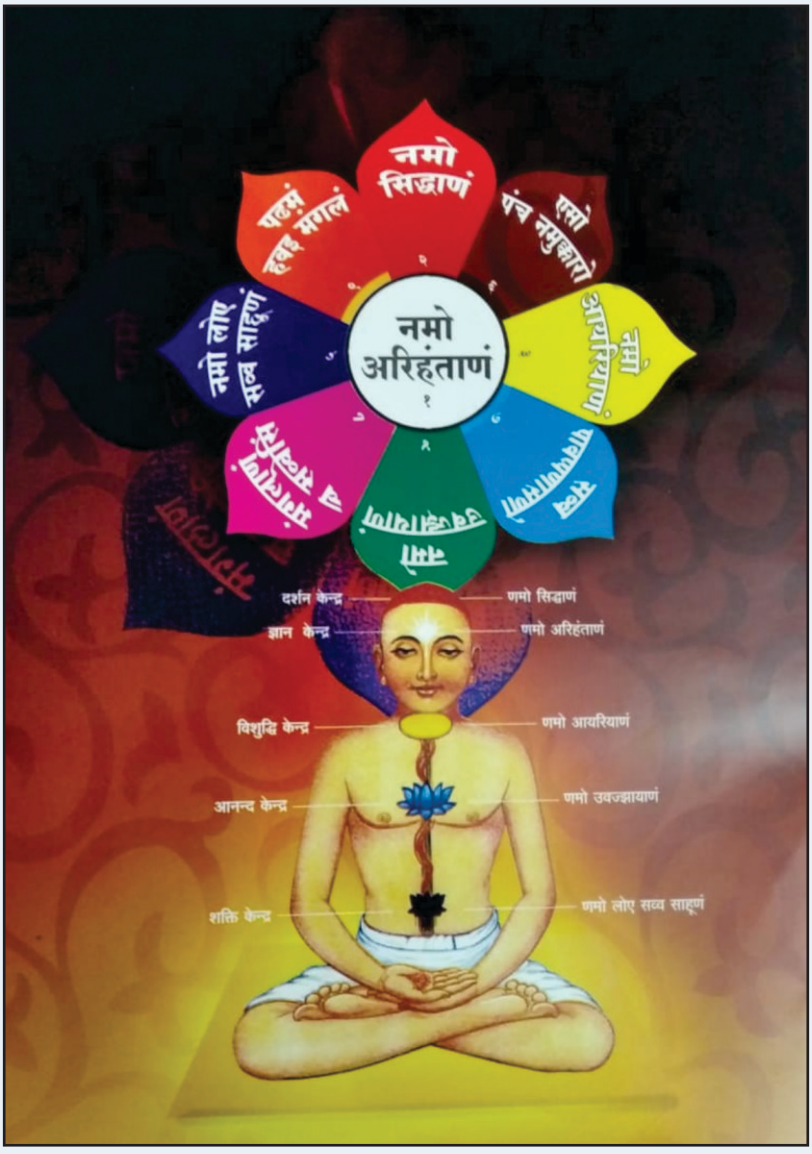

नवपद ओली की आराधनाा क्यों की जाती है ?

मूल रुप से यह आराधना श्री आदिनाथ भगवान की कही जाती है।